Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

महाकुम्भ हरिद्वार के पावन पर्व पर
प्रवाहित

अमृत-सरिता

प्रथम भाग

स्कैन्ड / Scanned

स्वामी परमानन्द

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रकाशक :
अखण्ड परमधाम
रानी की गली, सप्त सरोवर
हरिद्वार (२४९४१०)

संकलन एवं सम्पादन
नीरजा सक्सेना
एम० एस-सी०, बी० एड०

© प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : १९८७

प्रति : पाँच हजार

मूल्य : ४.००

मुद्रक :
दुर्गा मुद्रणालय
सुभाष पार्क एक्सटेंशन,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

क्रम

प्रस्तावना	३
प्रार्थना	४
कामना	५-३२
मोको लगे न रंचक रेख	३४-६५
ज्ञान कहे अज्ञान विनु	६६-९७
स्वप्न और जाग्रत का साक्षी	९८-११४
निर्मान मोहा	११५-१३३
मन के पार	१३४-१४४

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रस्तावना

हरिद्वार में महाकुम्भ का पावन पर्व अप्रैल १९८६ में मनाया गया था। इस पर्व को मनाने की परम्परा भारत में अति प्राचीन काल से चली आ रही है। मान्यता यह है कि देवताओं और दैत्यों ने समुद्र-मन्थन किया था। उससे चौदह रत्न प्राप्त हुए थे। अमृत-कलश उनमें से एक रत्न था। दैत्यों को अमृत से वंचित करने की दृष्टि से देवता अमृत-कलश लेकर भागे। दैत्यों ने उनका पीछा किया। भागते हुए देवताओं ने जहाँ-जहाँ अमृत-कलश रखा; वहीं-वहीं अमृत की कुछ बूंदें गिर गईं। ये बूंदें हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक में गिरीं थीं। अतएव, इन्हीं स्थानों पर कुम्भ का महापर्व, प्रति बारह वर्ष पश्चात् मनाया जाता है।

यह पर्व भारत की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का ऐसा महान् उत्सव है, जिसका उदाहरण विश्व के किसी भी देश में नहीं मिलता। अनेक देशों के विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों के लाखों लोग कुम्भ में एकत्रित होते हैं। वास्तव में, कुम्भ का महापर्व भारत में सन्तों और महात्माओं की आध्यात्मिक परम्परा की अनुपम उपलब्धियों की विश्व को बहुमूल्य देन है। भारतीय जनता की धार्मिक सहिष्णुता यहाँ प्रत्येक स्थान पर देखने को मिलती है। यहाँ से निस्रत अनेक आध्यात्मिक विचार धाराएँ, पावन माँ भगीरथी की भाँति, अपनी धर्मप्राण जीवनदायिनी शक्ति से, इस देश को दीर्घकाल से आप्लावित करती आई हैं। कुम्भ का महापर्व, भारतीय चिन्तन, साधना और आध्यात्मिकता का ऐसा अमृत है, जिसका पान करता हुए यह देश आज भी अजर अमर है। आत्मा के अमरत्व की देन, अद्वैत वेदान्त दर्शन की ही देन है, जिसकी गणना संसार के श्रेष्ठतम दर्शनशास्त्रों में की जाती है।

हरिद्वार में पुण्य सलिला गंगा माता के तट पर लगाए गए अखण्ड परम-धाम, सप्त सरोवर, हरिद्वार के पाण्डाल से पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों की अमृत-सरिता एक मास तक निरन्तर प्रवाहित होती रही है। कुम्भ में, देश-विदेश से आए एवं हरिद्वार में निवास कर रहे हजारों सन्तों, संन्यासियों, भक्तों एवं गृहस्थों ने, श्रद्धापूर्वक उस अमृत का पान किया है। स्थिति यह थी कि जो भी व्यक्ति एक बार पू० स्वामीजी का प्रवचन सुन लेता था, दूसरी बार वह अपने कई साथियों को साथ लेकर प्रवचन सुनने आता था।

पू० स्वामीजी द्वारा कुम्भ में दिए गये प्रवचनों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। पुस्तक का नाम अमृत-सरिता रखा गया है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में स्वामी चित्प्रकाशजी द्वारा दिए गये सहयोग के लिए प्रकाशन विभाग आभार प्रदर्शित करता है।

रामनवमी, ७ अप्रैल, १९८७
एफ-१३/५, कृष्णनगर, दिल्ली-५१

प्रेमनारायण सक्सेना
एम० ए०, एल एल० बी०

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रकाशक :
अखण्ड परमधाम
रानी की गली, सप्त सरोवर
हरिद्वार (२४६४१०)

संकलन एवं सम्पादन
नीरजा सक्सेना
एम० एस-सी०, बी० एड०

© प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : १६८७

प्रति : पाँच हजार

मूल्य : ४.००

मुद्रक :
दुर्गा मुद्रणालय
सुभाष पार्क एक्सटेंशन,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

क्रम

प्रस्तावना	३
प्रार्थना	४
कामना	५-३२
मोको लगे न रंचक रेख	३४-६५
ज्ञान कहे अज्ञान बिनु	६६-९७
स्वप्न और जाग्रत का साक्षी	९८-११४
निर्मान मोहा	११५-१३३
मन के पार	१३४-१४४

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रस्तावना

हरिद्वार में महाकुम्भ का पावन पर्व अप्रैल १९८६ में मनाया गया था। इस पर्व को मनाने की परम्परा भारत में अति प्राचीन काल से चली आ रही है। मान्यता यह है कि देवताओं और दैत्यों ने समुद्र-मन्थन किया था। उससे चौदह रत्न प्राप्त हुए थे। अमृत-कलश उनमें से एक रत्न था। दैत्यों को अमृत से वंचित करने की दृष्टि से देवता अमृत-कलश लेकर भागे। दैत्यों ने उनका पीछा किया। भागते हुए देवताओं ने जहाँ-जहाँ अमृत-कलश रखा; वहीं-वहीं अमृत की कुछ बूंदें गिर गईं। ये बूंदें हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक में गिरीं थीं। अतएव, इन्हीं स्थानों पर कुम्भ का महापर्व, प्रति बारह वर्ष पश्चात् मनाया जाता है।

यह पर्व भारत की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का ऐसा महान् उत्सव है, जिसका उदाहरण विश्व के किसी भी देश में नहीं मिलता। अनेक देशों के विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों के लाखों लोग कुम्भ में एकत्रित होते हैं। वास्तव में, कुम्भ का महापर्व भारत में सन्तों और महातमाओं की आध्यात्मिक परम्परा की अनुपम उपलब्धियों की विश्व को बहुमूल्य देन है। भारतीय जनता की धार्मिक सहिष्णुता यहाँ प्रत्येक स्थान पर देखने को मिलती है। यहाँ से निस्रत अनेक आध्यात्मिक विचार धाराएँ, पावन माँ भगीरथी की भाँति, अपनी धर्मप्राण जीवनदायिनी शक्ति से, इस देश को दीर्घकाल से आप्लावित करती आई हैं। कुम्भ का महापर्व, भारतीय चिन्तन, साधना और आध्यात्मिकता का ऐसा अमृत है, जिसका पान करता हुए यह देश आज भी अजर अमर है। आत्मा के अमरत्व की देन, अद्वैत वेदान्त दर्शन की ही देन है, जिसकी गणना संसार के श्रेष्ठतम दर्शनशास्त्रों में की जाती है।

हरिद्वार में पुण्य सलिला गंगा माता के तट पर लगाए गए अखण्ड परम-धाम, सप्त सरोवर, हरिद्वार के पाण्डाल से पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों की अमृत-सरिता एक मास तक निरन्तर प्रवाहित होती रही है। कुम्भ में, देश-विदेश से आए एवं हरिद्वार में निवास कर रहे हजारों सन्तों, संन्यासियों, भक्तों एवं गृहस्थों ने, श्रद्धापूर्वक उस अमृत का पान किया है। स्थिति यह थी कि जो भी व्यक्ति एक बार पू० स्वामीजी का प्रवचन सुन लेता था, दूसरी बार वह अपने कई साथियों को साथ लेकर प्रवचन सुनने आता था।

पू० स्वामीजी द्वारा कुम्भ में दिए गये प्रवचनों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। पुस्तक का नाम अमृत-सरिता रखा गया है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में स्वामी चित्प्रकाशजी द्वारा दिए गये सहयोग के लिए प्रकाशन विभाग आभार प्रदर्शित करता है।

रामनवमी, ७ अप्रैल, १९८७
एफ-१३/५, कृष्णनगर, दिल्ली-५१

प्रेमनारायण सक्सेना
एम० ए०, एल एल० बी०

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रार्थना

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में, है हार तुम्हारे हाथों में॥

मेरा निश्चय बस एक यही, एक बार तुम्हें पा जाऊँ मैं।
अर्पण कर दूँ दुनियाँ भर का, सब प्यार तुम्हारे हाथों में॥

जो जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ, जैसे जल में कमल का फूल रहे।
मेरे गुण-दोष समर्पित हों, भगवान् तुम्हारे हाथों में॥

यदि मानुष का मुझे जन्म मिले, तो तुझ चरणों का पुजारी बनूँ।
इस पूजक की एक-एक रग का, हो तार तुम्हारे हाथों में॥

जब-जब संसार का कैदी बनूँ, निष्काम भाव से कर्म करूँ।
फिर अन्त समय में प्राण तजूँ, भगवान् तुम्हारे हाथों में॥

मुझमें-तुझमें बस भेद यही, मैं नर हूँ तुम नारायण हो।
मैं हूँ संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में॥

हम तुमको कभी नहीं भजते, फिर भी तुम हमें नहीं तजते।
अपकार हमारे हाथों में, उपकार तुम्हारे हाथों में॥
उद्धार पतन अब मेरा है, भगवान् तुम्हारे हाथों में॥

□

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कामना

निद्रा में चाह का अन्त हो जाता है। भोग पाकर भी कुछ क्षण को चाह का अन्त हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति, प्रतिक्षण ऐसा अनुभव करता है कि उसकी चाह की पूर्ति हो गई। खा लेने पर भूख की और सुख भोगने पर सुख भोगने की इच्छा, कुछ देर के लिए मर जाती है और एक तृप्ति का अनुभव होता है। लेकिन, कामना फिर पैदा हो जाती है और अतृप्ति आ जाती है।

कामना की निवृत्ति में तृप्ति और कामना की उत्पत्ति में अतृप्ति है। लेकिन, जब तक हम कामना की पूर्ति करते रहेंगे; तब तक कामना बार-बार जन्मती रहेगी और अतृप्ति आती रहेगी। अतृप्ति न हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि कामना ही न हो और कामना ही न हो, इसके लिए बोध की आवश्यकता है।

कामना की पूर्ति करने के लिए बोध की आवश्यकता नहीं है। कामना की पूर्ति तो पशु भी करते हैं; किन्तु, वे कामना की निवृत्ति नहीं कर पाते। पशुओं को जब भूख लगती है, तब खाते हैं। जब काम-वासना आती है, तब भोगते हैं। कामना की पूर्ति तो पशु-पक्षी कर ही रहे हैं। परन्तु, मनुष्य वह है, जो कामना की निवृत्ति को लक्ष्य माने तथा कामना की निवृत्ति का उपाय करे। इस लोक की कामना ही नहीं; परलोक की कामना से भी मुक्ति नहीं है। इसीलिए कहा गया है—

'ब्रह्मलोक लौं भोग जो, चाहे सबन को त्याग।
वेद अर्थ, ज्ञाता मुनि, कहत ताहि बैराग।।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यहाँ के भोग की कामनाएँ हमको पराधीन किए हैं और आत्मस्थ नहीं रहने देतीं; स्वयं में सन्तुष्ट नहीं रहने देतीं। पदार्थों की इच्छाएँ, पदों की इच्छाएँ, हमें अतृप्त करती रहती हैं। उनकी पूर्ति में सुख का अहसास होता है, किन्तु कुछ देर बाद उनकी ईषणा फिर जाग्रत हो जाती है। ऐसी स्थिति में, परलोक के सुख भी हमें कैसे मुक्त होने देंगे ? परलोक के सुख भी तो आखिर मेरे से भिन्न, मेरे में कल्पित, मेरे जाने और माने हुए तथा नश्वर हैं। ये सुख-भोग मेरे जीवन को तृप्त नहीं कर सकते। इसलिए, लोक और परलोक दोनों की ही कामना से छुटकारा पाना है।

एक कहानी प्रसिद्ध है कि एक दिन एक बुढ़िया एक हाथ में मशाल और दूसरे हाथ में जल का लोटा लिए जा रही थी। आश्चर्य की बात थी। उसके एक हाथ में जलती मशाल थी और दूसरे हाथ में पानी का लोटा था। किसी व्यक्ति ने पूछा—"माताजी, तुम कहाँ जा रही हो ? क्या करने जा रही हो ? ये किसलिए लिये हो ?" उसने कहा—"बेटा ! लोग स्वर्ग को दूर मानकर, उसे मरने के बाद पाने के लिए दिन-रात तड़प रहे हैं। उनकी उस तड़पन को मिटाने की भावना से मैं चाहती हूँ कि इस मशाल से स्वर्ग को आग लगा दूँ और उन आदमियों को बता दूँ कि स्वर्ग जल गया है। इसलिए, उसकी इच्छा छोड़कर यहाँ ही सुखी होने की इच्छा करें।"

उसने दूसरी बात और कही—"लोग मरने के बाद वाले नरक से डरकर चैन नहीं पा रहे हैं। स्वाभाविक जीवन नहीं जी पा रहे हैं। नरक न चले जाएँ, इसके उपाय कर रहे हैं। पर, यहाँ वे जिन कामनाओं के, इच्छाओं के और तृष्णाओं के नरक में जी रहे हैं, उनको दूर करने की कोशिश नहीं करते। यह मानकर कि दूर कोई नरक है, वे उस नरक को हटाने की कोशिश कर रहे हैं। नरक न चले जाएँ, यह सोच रहे हैं। कामनाओं के नरक में जो जी रहे हैं, वे इस नरक का नंगा दर्शन नहीं कर पा रहे हैं। इसलिए मैं वहाँ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

के नरक को पानी डालकर बुझा आऊँगी और कहूँगी कि वहाँ का नरक तो बुझ गया है, यदि बुझा सको तो यहाँ का नरक बुझाओ। वहाँ का नरक तो मैंने खतम कर दिया। अब तुम, यहाँ नरक हो, तो खोजो। तुम वहाँ के स्वर्ग की आशा न करके, यहाँ इस समय कोई स्वर्ग अनुभव कर सकते हो, तो करो।"

विवेक द्वारा, वर्तमान में ही सुख की अनुभूति करना, वास्तविक स्वर्ग है। यहाँ के दुःखों को देखना ही, वास्तविक दुःख है। आज लोग, जो स्वर्ग यहाँ नहीं है, उसके पाने का उपाय कर रहे हैं। हमारा दिव्य स्वभाव, जो स्वर्ग यहीं पैदा कर सकता है, उसे पैदा नहीं कर रहे हैं। जो नरक, यहीं बुझ सकता है, उसे नहीं बुझा रहे हैं। वहाँ के नरक और वहाँ के स्वर्ग के विवेचन में लोग लगे हुए हैं। तुम लोग भी शायद यही कर रहे हो।

यहाँ कुम्भ में बहुत से लोग नरक से बचने का उपाय ढूँढ़ने आए होंगे। उस नरक को इनके बाप-दादाओं ने भी नहीं देखा है। जिस स्वर्ग का तुम्हें कोई अनुभव नहीं है, सिर्फ सुना ही है; उसे पाने का उपाय कर रहे हो। उस नरक से छूटने के उपाय कर रहे हो, जिसे तुमने देखा तक नहीं है। जिस नरक को रोज अनुभव कर रहे हो, उससे छूटने का कोई उपाय नहीं कर रहे। क्या इस समय यहाँ कोई नरक है ? नहीं है। दुःख ही नरक है और सुख ही स्वर्ग है। अभी भी, कभी-कभी जब मन अच्छा होता है, तो जीवन स्वर्ग लगता है और जब मन बुरा होता है, तब जीवन नरक लगता है। हम इस बात की ओर ध्यान दें कि जीवन में स्वर्ग स्थायी रूप से रहे। स्वर्ग स्थायी हो जाए और नरक से स्थायी रूप से छुटकारा हो जाए। लेकिन, इसके लिए हम कोई उपाय नहीं कर रहे हैं।

वह बुढ़िया बड़ी समझदार थी। उसने सोचा कि कुम्भ में बहुत लोग आए हैं, तो यह घोषणा कर दूँ कि नरक में पानी डालकर नरक की आग बुझा दी है और स्वर्ग को आग लगाकर जला दिया है।

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

इसलिए, स्वर्ग जाने के लिए अब कोई उपाय मत करना और जो नरक यहाँ नहीं है, उससे बचने के लिए भी उपाय न करना। जो स्वर्ग यहाँ नहीं है, जो स्वर्ग यहाँ प्राप्त नहीं होता; ऐसे स्वर्ग की इच्छा मत करना। ऐसे नरक से मत डरना, जो यहाँ नहीं है। उस नरक से बचने के उपाय करो, जो यहाँ मौजूद है।

मेरे विचार से, जिन लोगों ने यहाँ के नरक को समाप्त कर लिया है, उनके लिए कहीं नरक नहीं है। जिन्होने यहाँ के स्वर्ग को पा लिया है, उन्हें वहाँ के स्वर्ग की जरूरत ही नहीं है। वहाँ का स्वर्ग वे ढूँढा करते हैं, जिन्हें यहाँ के स्वर्ग का पता नहीं चला है और वहाँ के नरक से वे लोग डरते हैं, जिन्होंने यहाँ के नरक को नहीं समझा है।

जीवन का अनुसन्धान करिए। ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलेगा। आप अभी भी तो दुखी हो, परेशान हो और चिन्तित हो। अभी भी तो ऐसा अनुभव कर रहे हो कि भगवान नहीं मिले। मर जाने के बाद भगवान मिलेंगे, ऐसा तो सोचते हो; पर अभी भी भगवान मिल सकते हैं, ऐसी कोशिश नहीं करते। कभी-कभी महात्माओं के पास जाकर भी कहते हो "स्वामीजी ! आप ऐसी कृपा करना कि जब हम मरें, तो भगवान के ही लोक को जाएँ। भगवान में मिल जाएँ। ब्रह्मलीन हो जाएँ। ब्रह्मधाम को जाएँ।"

तुम भौतिक चिन्तन वाले लोग हो। मरने के बाद तुम परमात्मा के यहाँ जाओ, यह इच्छा तो करते हो; पर तुम्हारे अन्दर इतना विवेक नहीं है कि शरीर, मन और इन्द्रियों के रहते भी, तुम अभी भगवान के साथ हो सकते हो। जो अभी भगवान के साथ नहीं हो सके हैं, उनके मन में यह कामना है कि उनके गुरूजी मरने के बाद उन्हें भगवान के पास भेज दें।

कई सम्प्रदायों ने तो मरने के बाद भगवान के पास भेजने का ठेका ले रखा है। तुम भी उन ठेकेदारों के यहाँ हो आना। इस

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मेले में, हमारे यहाँ बिजली का कनेक्शन देने का एक ठेकेदार ने ठेका लिया है। कुछ ठेकेदार बड़े खतरनाक होते हैं। वे ठेका ले लेते हैं, उसके बाद परेशान करना शुरू कर देते हैं। जिन ठेकेदारों ने, स्वर्ग भेजने का ठेका ले रखा है; वे कुछ रुपया लेकर, कुछ शर्तों के साथ, तुम्हें स्वर्ग पहुँचाने का, भगवान के यहाँ पहुँचाने का, ठेका ले लेते हैं। कई लोग तो यह आश्वासन भी देते हैं कि मरने के बाद तुरन्त स्वर्ग दे देंगे; लेकिन, क्या मिला तुम्हें वह स्वर्ग ? किसी को स्वर्ग मिला हो, ऐसा नजर नहीं आता।

यदि जीते जी किसी को स्वर्ग मिले, तो वह भरोसे की चीज है। यदि जीते जी किसी को भगवान मिले हों, तो कम-से-कम वह तो यह कहेगा कि उसे भगवान मिले। उसे भगवान का पता चल गया। वह स्वर्ग हो आया। उसने स्वर्ग का सुख पाया। उसने शान्ति पाई। उसने भगवान को जाना। उसने भगवान को पाया और अब वह भगवान से एक होकर जीता है। अब वह भगवान के साथ रहता है। उसमें भगवान रहते हैं और वह भगवान में रहता है।

स्वामी राम का एक गीत है—

'अजब अलौकिक स्वरूप मेरा, कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।'

तुम भी कभी यह सोच सको कि तुम भगवान में हो और भगवान तुममें हैं। तुम भगवान से जुदा नहीं हो और भगवान तुमसे जुदा नहीं हैं। यदि, अभी आप मन से भगवान में निवास करें, तो यह अनुभव आप अभी-अभी कर सकते हैं। लेकिन, तुम कभी सोचते ही नहीं हो कि मन से भगवान में निवास करना भी कोई निवास करना होता है। क्योंकि, भौतिक आदमी या भौतिक लोक का आदमी, शरीर से वह जहाँ रहता है, वहीं वह रहना मानता है।

आपका यह बड़ा सौभाग्य है कि आपने स्वप्न देखे हैं। अब आप मुझे यह बताइए कि स्वप्न में आप शरीर से होते हैं या मन से

Digitization by American Academy of Indic Studies-AAIS(USA)

होते हैं ? स्वप्न में यदि आपने गंगाजी में स्नान किया; स्वप्न में यदि आप बाजार गए; स्वप्न में यदि आप दुखी हुए; स्वप्न में यदि आप सुखी हुए; स्वप्न में यदि आपको धन प्राप्त हुआ, पुत्र-लाभ हुआ, पत्नी लाभ हुआ, साधू-संन्यासी बन गए; तो आप इस देह से बन गए थे या मन से बन गए थे ? आप मन से ही बने थे। गहराई से देखो ! मन से जिस दिन तुम पूरे बन जाओगे, उस दिन तुम यह महसूस नहीं कर सकोगे कि तुम सचमुच नहीं हो। तन से कहीं होने को ही तुम अपना होना मानते हो। पर, ध्यान दो कि तुम मन से भी कहीं होते हो। कभी-कभी तन से यहाँ होते हो; लेकिन, मन से कहीं और होते हो। कभी-कभी तन से घर में होते हो; लेकिन, मन से बाजार में होते हो। कभी-कभी तुम पैसे से अमीर होते हुए भी, मन से दरिद्र ही होते हो, कंगाल ही होते हो।

तुम मन से जो होते हो, उसका महत्त्व ज्यादा है। तन से होने का उतना महत्त्व नहीं है। लेकिन, भौतिक आदमी, स्थूल बुद्धि वाले लोग, तो यही मानते हैं कि वे तन से ही हैं। यदि वे तन से गद्दी पर बैठे हैं, तो गद्दी पर हैं। यदि तन से पूज्य हैं, तो पूज्य हैं। यदि तन से वे गद्दी पर नहीं हैं, तो वे कुछ भी नहीं हैं। वैसे, जो आदमी अपने मन से, विचारों से और ख्यालों से महान् होते हैं; यदि वे पैदल चलते हों, तो महान् नहीं हैं ? लेकिन, तुम तो हवाई जहाज में हो, तो ही महान् होते हो; कार में हो, तो ही महान् होते हो; गद्दी पर हो, तो ही महान् होते हो।

क्या तुम अपने विचारों से महान् नहीं होते ? लेकिन, उसका तुम्हें मूल्य नहीं मालूम। वे तुम्हें मन-मोदक मालूम पड़ते हैं। क्योंकि, अभी तुम्हारा मस्तिष्क स्थूल है; इसलिए, स्थूल चीज हो, तो लगता है कि कुछ है। तुम सूक्ष्म को होना नहीं मानते। जब आप मन से दुखी होते हैं, तब क्या आप दुखी नहीं होते ? जब आप मन से शान्त होते हैं, तो क्या आप शान्त नहीं होते ? मन का ही तो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सारा खेल है। इसलिए—

'मनसैवानु दृष्टव्यं।'

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो।'

मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। तन से क्या होना है? तन से तो तुम बालक हुए हो, जवान हुए हो, बूढ़े होगे और मरोगे। तन से तो तुम इतना ही हो सकते हो। अमर तो आप मन से ही हो सकेंगे; अनुभूति में ही हो सकेंगे। इसलिए, यही बात महत्त्व की है कि आप अपने मन से क्या हैं? मन से कहाँ हैं? मन से ही आप चैतन्य होंगे; मन से ही आप साक्षी होंगे। आप मन से, विचार से और बुद्धि से ही दृष्टा हो सकेंगे।

स्वप्न में आप यह महसूस करते हैं कि आप आदमी हैं। क्या आप यह भी महसूस कर सकते हैं कि आप स्वप्न के दृष्टा हैं; स्वप्न के आप आधार हैं? क्या हैं आप? सोच के देखिए! आपने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में आप आदमी हैं। स्वप्न में और भी आदमी, हैं। अब आप देखिए कि स्वप्न के आप और स्वप्न के और आदमी दोनों ही स्वप्न हैं। वहाँ सच क्या है? उस समय आप दृष्टा हैं या आप आदमी हैं? उस समय आप अपने को आदमी जानते हो या दृष्टा जानते हो?

जो कुछ आप उस समय जानते हैं, हम उसी से अन्दाज लगाया करते हैं। एक माँ स्वप्न में अपने बेटे को दूध पिलाती है। वह अपने को बेटा मानती है या माँ मानती है? माँ मानती है। माँ सच्ची है या बेटा सच्चा है? दोनों झूठे हैं। तो फिर उसमें सच कौन है? माँ सच है? तो स्वप्न को देखने वाला किधर रहता है? बेटे की तरफ कि माता की तरफ कि बीच में रहता है? जो स्वप्न को देखने वाला है, वह माँ में ज्यादा रहता है कि बेटे में रहता है कि बीच में रहता है कि सबमें रहता है? स्वप्न को देखने वाला स्वप्न में किधर रहता है? स्वप्न को देखने वाला तो सबमें रहता है और

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अकेला सत्य है। बाकी सब स्वप्न है। लेकिन, जब स्वप्न देखता है, तब स्वप्न देखने वाला अपने को क्या जानता है? यदि दृष्टा जानता, तो माँ का मुँह कैसे जानता? बात तो इतनी ही है।

यह स्वप्न का दृष्टान्त सुन-सुन करके आप लोग तोते की तरह अभ्यस्त हो गये हैं। दृष्टा-दृष्टा भी बोलते-बोलते आदी हो गये हैं। उत्तर तुम सही देते हो; पर अभी समझ नहीं है। मैं उत्तर नहीं रटाना चाहता। उत्तर रटवाना होता, तो आप लोगों को वेदान्ती बनाने में मुझे केवल पाँच दिन लगते। वेदान्ती बनाने के लिए छठवें दिन की जरूरत नहीं होती। ऐसे वेदान्त में मुझे शुरू से ही रुचि नहीं है। ऐसे वेदान्त से तो मुझे चिढ़ है। जिसको लोग वेदान्त कहते हैं, उस नाम से मुझको एलर्जी है। जैसे कई लोगों को धुएँ से, धूप से या धूल से एलर्जी होती है, ऐसे ही मुझको शिवोऽहम् से एलर्जी है। जो आदमी रटकर बोलता है, रटकर उत्तर देता है, क्या वह वेदान्त समझता है?

मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या कभी भी तुमने स्वप्न में अपने को दृष्टा जाना है? तुमने तो जगकर भी कभी दृष्टा नहीं जाना। जब स्वप्न से जग गये, तब भी तुमने यह विचार नहीं किया कि आखिर स्वप्न में सत्य क्या था? स्वप्न में झूठ क्या था? स्वप्न का बाप, स्वप्न का बेटा, स्वप्न की माँ और स्वप्न के तुम, इनमें सत्य क्या है? और यदि वह सत्य नहीं है, तो फिर सत्य क्या है? तुमने जग जाने पर भी सत्य के बारे में नहीं सोचा। यदि स्वप्न से जगने पर, स्वप्न के सत्य का इतना सा ही अनुभव हो गया होता; तो पशु भी आत्म-विचार को उपलब्ध हो गये होते। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि यदि कोई व्यक्ति, स्वप्न का ही ठीक से विचार कर ले; तो उसे आत्मबोध हो जाएगा। केवल स्वप्न के विचार से आत्मबोध हो जाएगा।

ऋषियों ने यह कहा भी है,—

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'जाग्रत स्वप्न सुषुप्त्यादि प्रपञ्चं यत् प्रकाशते ।'

यह सोचो कि स्वप्न को कौन प्रकाशता है ? स्वप्न को देह प्रकाशता है ? स्वप्न को इन्द्रियाँ प्रकाशती हैं ? स्वप्न को मन प्रकाशता है ? नहीं । जो चैतन्य, स्वप्न में भी चेतन ही था, जिस चेतन के आश्रित स्वप्न में आदमी, औरत, आसमान, धरती, आकार, निराकार, शून्य और पदार्थ सब दिख गए; केवल वह साक्षी, चैतन्य, अधिष्ठान, आत्मा ही सत्य था और सब मिथ्या थे ।

जो आदमी और औरत में, जो बाप और बेटे में, जो पृथ्वी और आकाश में सबको खड़ा किए था और सबमें एक जैसा था; क्या उस अधिष्ठान का कोई आकार था ? स्वप्न-दृष्टा किसमें ज्यादा होता है ? आदमी में कि औरत में, पेड़ में कि पहाड़ में ? पहाड़ में दृष्टा नहीं रहता होगा ? स्वप्न के पहाड़ का दृष्टा और स्वप्न के आदमी का दृष्टा एक ही है; किन्तु स्वप्न में लगता है कि दृष्टा आदमी में, मेरे में ही तो रहता है । स्वप्न में, पहाड़ में दृष्टा नहीं होता; स्वप्न में आदमी में होता है । पहाड़ किसमें रहता है ? क्या स्वप्न का पहाड़, चेतन से अलग होता है ? नहीं । लेकिन, लगता है कि दृष्टा जैसे देह में आबद्ध है । दृष्टा भी यही सोचता है कि "मैं देह हूँ और यहाँ रहता हूँ" । वह ऐसा विचारता है कि 'मैं' हूँ और यह मेरा बेटा है । लेकिन, जो दृष्टा ऐसा सोचता है, वह अविवेक से ऐसा सोचता है । असल में दृष्टा तो सबमें रहता है ।

मुझे वेद का एक मन्त्र बड़ा प्यारा लगता है । यह मन्त्र ईशावास्योपनिषद् का है । मैं समझता हूँ कि इस मन्त्र को जरूर याद रखना चाहिए । इस मन्त्र पर बार-बार विचार करना चाहिए । यह मन्त्र जीवन का उद्धार कर सकता है । इससे आर्यसमाजी और सनातनी दोनों ही सहमत हैं; क्योंकि, यह वेद का मन्त्र भाग है । यह मन्त्र यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का है—

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।।'

जो सब प्राणियों को अपने में और अपने को सब प्राणियों में देखता है, वह कभी ईर्ष्या नहीं करता । तुम स्वप्नों को अपने में देखो और अपने में सब स्वप्नों को देखो । किसी भी स्वप्न को न अपने से दूर देखो, न नजदीक देखो । अभी स्वप्न में भी कोई तुम्हारे नजदीक होता है और कोई दूर होता है । नहीं होता ? होता है । जैसे अभी जाग्रत में तुम्हारे नजदीक क्या है और तुमसे दूर क्या है ? इस समय पण्डाल और गंगा नजदीक हैं, हरिद्वार थोड़ा दूर है । फिर जरा और देखो । दिल्ली, बम्बई और कलकत्ता नजदीक हैं कि दूर हैं ? दूर हैं । स्वप्न में कैसा होता है ? ऐसा ही स्वप्न में होता है । क्या तुम कभी सबमें होते हो ? क्या तुमने कभी भी अपने को सबमें देखा है और सबको अपने में देखा है ? नहीं देखा । जब तक यह नहीं देखा, तब तक ज्ञान ही नहीं हुआ ।

उपनिषद् कहता है—

'यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति,
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।'

जो अपनी आत्मा को सबमें और सबको अपनी आत्मा में देखता है, वह फिर कभी जलता नहीं । वह ईर्ष्या नहीं करता; झुलसता नहीं; दुखी नहीं होता और कामनाओं में नहीं जलता ।

इसी का अगला मन्त्र है—

'यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ।।'

जो, अपने को जान लेने के बाद, सबको आत्मा ही देखता है; जिसको सब आत्मा ही लगने लगती हैं; उसे 'मैं' के अलावा कुछ लगता ही नहीं । पहले तो सबमें अपने को देखा और अपने में सबको देखा । फिर, सबको नहीं देखा । फिर क्या देखा ? सब आत्मा ही

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हो गई हैं। सब 'मैं' ही रह गया है। 'मैं' ही हूँ, ऐसा लगने लगा। जैसे स्वप्न में एक आदमी एक देह को 'मैं' जानता है; ऐसे ही कोई आदमी सबको 'मैं' जाने। वह सबको उतना ही नजदीक जाने, जितना कोई घड़ा मिट्टी को नज़दीक जानता है। घड़ा, मकान को अपने से दूर देखता है। मकान, घड़े को अपने से दूर देखता होगा और नजदीक भी देखता होगा; लेकिन, अपने में नहीं देखता होगा। कुछ न कुछ दूर ही देखता होगा। परन्तु, जो घड़ा अपनी आत्मा अर्थात् मिट्टी को अपना आप जानता है; वह अपने घड़े को भी अपने ही में देखता है और वह मकान को भी अपने में ही देखता है।

वह किस मकान को नजदीक देखता है और किस मकान को दूर देखता है? जो घड़ा अपने को मिट्टी देखता है, वह किसी भी मकान को दूर नहीं देखेगा। वह मकान को दूर नहीं देख सकता। जो घड़ा अपने को जानता है, उसके जानने का लाभ यह हुआ कि वह अपने से दूर कुछ नहीं देखता। सब अपने में देखता है और अपने को सबमें देखता है।

कीमत देखने की है; सुनने की नहीं। यह देखने की कुंजी है। क्या आपने कभी ऐसा देखा? क्या आप कभी ऐसा देख पाए? क्या आपका मनोभाव कभी ऐसा बना? क्या आपने उस सत्य को जाना, जिसके जान लेने पर सबमें अपने को देखा जा सकता है?

अपने को घड़ा देखकर कैसे कोई मकान को अपने में देखेगा? जो अपने को घड़ा देखेगा, वह मकान को, दुकान को, मन्दिर को और गुरुद्वारे को और देखेगा। और जो घड़ा अपने को मिट्टी देखेगा, वह सबको मिट्टी देखेगा और अपने को सबमें देखेगा। उसका अगला कदम उठेगा और तब वह अपने अलावा कुछ नहीं देखेगा। वह अपने आपको ही सर्वत्र देखेगा।

तुम भी ढूंढ़ना शुरू करो। जिस दिन, जिस सेकण्ड तुम्हें अपने अलावा कुछ न मिले, समझो कि ज्ञान हो गया। आप कहेंगे कि

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

फिर बाद में व्यवहार कैसे चलेगा ? फिर बाद में सब घड़े मकान बना लेंगे और फिर काम चला लेंगे। कल्पित मकान, कल्पित घड़ा, कल्पित मन्दिर, कल्पित मस्जिद, कल्पित गुरुद्वारे, कल्पित चबूतरे, कल्पित ईंटें, कल्पित द्वैत; वास्तविक केवल अद्वैत। जगत कल्पित, ब्रह्म अकल्पित। कल्पित देह, अद्वैत सत्य। भेद कल्पित, अभेद सत्य। एक सत्य, अनेक असत्य। अनेक कल्पित लगेंगे और एक सत्य लगेगा। कल्पित माने स्वप्न।

'जेहि जानें जग जाइ हेराई।
जागें जथा सपन भ्रम जाई ॥'

मुझे दो से एलर्जी है। एक तो बिना जाने सोऽहम् से और दूसरे रामायणियों से। रामायणियों ने रामायण गा-गाकर जनता को सिर हिलाने की आदत डाल दी है। जब कनफटा महुअर बजाता है, तो साँप झूमने लगता है। पर, इससे साँप का जहर नहीं जाता। महुअर सुनने से साँप मुग्ध हो जाता है, पर जहर नहीं जाता। ऐसे ही, रामायण को सिर हिला-हिलाकर, आँसू बहाकर सुन लेने से, अज्ञान, अहंकार और नासमझी का जहर नहीं जाता। यह जहर तो तत्त्व-बोध से ही जाएगा। इसलिए, आपसे निवेदन है कि यदि वेदान्त सुनना है, तो छाती बहुत मजबूत करके आओ। इतनी हिम्मत जुटाकर आओ कि यदि स्वर्ग जाने का अवसर भी मिल रहा हो, तो स्वर्ग जाने से इन्कार कर सको।

'ब्रह्म लोक लौं भोग जो चाहे सबन को त्याग,
वेद, अर्थ, ज्ञाता, मुनि कहत ताहि बैराग।'

अभी तो तुम्हें पिक्चर देखने का ही टिकट मिल जाए, तो भाग जाओगे। अभी तो रामलीला का ही पता चल जाए कि शुरू होने वाली है, तो भाग जाओगे। भोजन करने का समय हो जाएगा, तो भाग जाओगे। यह वेदान्त उनकी समझ में ही आता है, जिन्हें ब्रह्मलोक से निमन्त्रण मिलने पर भी, वहाँ जाने की फुरसत नहीं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है। यह वेदान्त ऐसे लोगों की ही समझ में आता है। असल में रोटी के भूखे, पदों के भूखे, वासनाओं की लिप्सा में दबे लोगों को जब हम वेदान्त सुनाते हैं, तो वे लोग कहते हैं कि वेदान्त बेकार है। उन लोगों ने वेदान्त को बेकार कहा। हमने ऐसे लोगों को वेदान्त सुनाया, जो इसके सुनने के अधिकारी नहीं थे।

शंकराचार्य शिवोऽहम् की निन्दा करते हैं। यदि लोग तालियाँ बजाकर समर्थन प्रकट करते हैं, तो मैं इस बात को निन्दनीय मानता हूँ। ऐसे श्रोता, जिन्होंने तालियाँ बजाकर समर्थन किया है; जरूर ही शिवोऽहम् से चिढ़े हुए होंगे।

जिस अध्यात्म विद्या को, उपनिषदों ने आदर दिया है, ऋषियों ने आदर दिया है; ये गद्दियों पर बैठे लोग उसकी निन्दा करते हैं। इस दुनियाँ में, वेदान्त के अलावा, मनुष्य को जीते जी मुक्ति देने वाला कोई सिद्धान्त नहीं है।

मैं कहता हूँ कि इस धरती पर, वेदान्त के अलावा, उद्धार करने वाला कोई दर्शन नहीं है। अध्यात्म विद्या ही एकमात्र विद्या है। यह न स्वर्ग जाने की विद्या है, न नरक जाने की। यह पुण्य की विद्या भी नहीं है। पापियों के लिए भी इसके द्वार खुले हुए हैं; बशर्ते कि उनका अन्तःकरण इसके लिए तैयार हो गया हो। मांस खाने वाले को भी बोध हो जाएगा; लेकिन, ऐसे मूर्खों को बोध नहीं होगा, जो इस विद्या का आदर नहीं करते। ब्रह्मविद्या से ज्यादा किसी चीज को महत्त्व देने वाले को भी बोध नहीं होगा। यह अद्वितीय विद्या है। यह सर्वोपरि विद्या है। यही उपनिषद् विद्या है। ब्रह्मविद्या का दूसरा नाम ही उपनिषद् विद्या है। तो—

'उपनिषदं पुरुषं प्रच्छामि'

अर्थात् उपनिषदों ने ही इस विद्या को समाज में प्रचलित किया है। अध्यात्म विद्या के मूल ग्रन्थ वेद और उपनिषद् हैं। इन ग्रन्थों का अध्ययन करने के बाद, इनके सिद्धान्तों का, हिन्दी, गुरुमुखी,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

संस्कृत, उर्दू, फारसी या किसी अन्य भाषा में, उपदेश किया जा सकता है। गीता उपनिषदों से ही निकली है। इसलिए, गीता भी उपनिषदों की ही तरह सम्मान के योग्य है। सरलता की दृष्टि से, वह उपनिषदों से भी ज्यादा अच्छी है। भाषा की दृष्टि से, उपनिषद् हमारे लिए कठिन हैं।

मेरे प्रवचन गीता और उपनिषदों से भी ज्यादा सरल हैं। वे उपनिषदों या गीता के सिद्धान्तों पर ही आधारित हैं। फिर फर्क क्या है ? प्रवचन सरल भाषा में हैं। ग्रन्थों की भाषा कठिन है।

इस देश में, जब-जब महापुरुषों का प्रादुर्भाव हुआ, तो उनकी बातों का समाज में ज्यादा आदर हुआ। ग्रन्थ तो पहले से ही मौजूद थे। यदि ग्रन्थों से ही बात बन जाती, तो फिर महापुरुषों की आवश्यकता ही नहीं होती। भगवान कृष्ण के काल में भी वेद थे। फिर भी गीता की आवश्यकता पड़ गई। ऐसे ही, वेदों और गीता के रहते हुए भी, महापुरुषों के प्रवचनों की आवश्यकता है। जब तक वेदों, उपनिषदों और गीता के सिद्धान्तों को सरल भाषा में समझाने वाले व्यक्ति नहीं होंगे, तब तक ब्रह्मविद्या के ग्रन्थ तो रहेंगे; लेकिन, समाज मूर्ख ही बना रहेगा।

कुम्भ के अवसर को चाहे कोई किसी भी दृष्टि से सराहे, पर मैं उसे इस दृष्टि से सराहता हूँ कि जो लोग तीर्थ स्थानों पर साधारणतया नहीं आ पाते हैं, वे भी सौभाग्य से कुम्भ के कारण यहाँ आएँगे। यहाँ आकर वे हमारे प्राचीन महर्षियों और मुनियों के उपदेश सुन सकेंगे।

आज से यहाँ भागवत की कथा प्रारम्भ होगी। यह कथा, शुकदेवजी द्वारा राजा परीक्षित को सुनाई गई थी। इस कथा के सुनने से राजा परीक्षित को ज्ञान प्राप्त हुआ था। शुकदेवजी ने जिन फलों में चोचें मार दीं, वे ही काट-काटकर फेंके हैं। लोग उन फलों को तोड़-तोड़कर, खा-खाकर कहते हैं कि फल बहुत मीठे हैं। तोते

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

के काटने से फल मीठे नहीं होते। वह तो मीठे फलों को ही काटता है। उसको यह पता चल जाता है कि कौनसे फल मीठे हैं। अतः, शुकदेवजी जिस कथा को सुनाएँ, वह जरूर मीठी होगी। सन्त जिस कथा को कहते हैं, वह भी शुकदेवजी की कथा की ही तरह है। सन्त ऐसी-वैसी कथा को मुँह ही नहीं लगाते।

भगवान की कथा बड़ी ही मीठी है। इसीलिए, शुकदेवजी ने भगवान की कथा कही है। भगवान की कथा के अलावा किसी अन्य कथा में सार भी कहीं नहीं है। कोई भाग्यशाली ही भगवान की कथा सुनते हैं। जो जानते हैं, वे ही तोते के खाए हुए फलों को बीन लेते हैं। वे उन फलों को उठा लेते हैं और खाते हैं। कुछ लोग यह समझते हैं कि ये फल तो खाये हुए हैं; इनको हम क्यों खाएँ? तो ढूँढ़ते रहो मीठे फलों को। जब तुम खाओगे, यदि खट्टा लगेगा तो फेंकोगे। शवरी की तरह आप अनुभव कर-कर के खा पाते हैं।

कोई तो शुक के खाए हुए फल खाता है; लेकिन, राम ने तो शवरी के खाए हुए फल खाए थे। शवरी चख-चखकर, मीठे फल छाँट-छाँटकर रखती थी। यदि, शवरी भगवान को मीठे बेर छाँट-छाँटकर खिला सकती है; शुकदेवजी मीठे फल खिला सकते हैं; तो सन्त महात्मा भी तुम्हें वे कथाएँ ही सुनाते हैं जिनका कि वे आनन्द ले चुके हैं। वे झूठी वाली ही तुम्हें सुना देते हैं। वे वह नहीं देते, जो तुम्हें न भाए। झूठी तो वे भी की ही होंगी। लेकिन, उनकी छँटनी कर दी है। क्या शवरी ने मीठे-मीठे ही बेर खाए होंगे? बिचारी शवरी ने तो खट्टे बेर भी खाए होंगे और मीठे बेर भी खाए होंगे। परन्तु, राम को मीठे-मीठे बेर ही छाँटकर दिए थे। ये है प्रेम।

साधुओं ने तो कड़वे ग्रन्थ भी पढ़े हैं। नास्तिकों के भी पढ़े हैं। दुष्टों के लिखे भी पढ़े हैं। हमें तो वे पढ़ने ही पड़ेंगे; क्योंकि, हम तुम्हारे लिए उपयोगी ग्रन्थ छाँटना चाहते हैं। सन्त महात्माओं को

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तो वे ग्रन्थ भी पढ़ने पड़ते हैं, जो तुम्हारे लिए जरूरी नहीं हैं। वे पढ़कर देख लेते हैं कि वे ग्रन्थ तुम्हारे लायक नहीं हैं; पर, उनके लायक हैं। वे उन ग्रन्थों को पढ़कर यह भी देखते हैं कि कौन-से ग्रन्थ अभी तुम्हारे काम के नहीं हैं और कौन-से अभी तुम्हारे काम के हैं। वे उनमें से छाँट-छाँटकर उपयोगी ग्रन्थ ही तुम्हें देते हैं।

साधुओं की बात बहुत कम लोग सुनते हैं। आप लोग भी कितना सुनेंगे पता नहीं ? आप लोग बैठे ही रहते हैं या सुनते भी हैं ? मैं यह कहता हूँ कि जो ईमानदारी से कथा सुनेगा, उसको इतना रस आने लगेगा कि फिर उसे दूसरी कथा अच्छी ही नहीं लगेगी। कथा को दिल से सुनें, तो ही अच्छी लगती है। यदि नास्तिकता से सुनेंगे, ऊपरी मन से सुनेंगे, निन्दा के भाव से सुनेंगे, अश्रद्धा से सुनेंगे, तो कथा जहर लगेगी। जो व्यक्ति, पहले से ही ईर्ष्याभाव रखता हो, उसे तो यह कथा जहर ही लगेगी।

मैं उदाहरण से इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न करता हूँ। जिससे हमें नफरत हो जाती है, यदि उसकी कथा जम भी रही हो, तो भी हमें बुरी लगती है। जिनकी वेदान्त के प्रति अश्रद्धा है; जिनकी आत्मज्ञान के प्रति अश्रद्धा है; वे कथा से ही चिढ़ते हैं। कुछ लोगों ने अश्रद्धा करा भी दी है। जिनकी धारणा ही बिगड़ गई हो, वे फिर अध्यात्मवाद को कैसे सुनेंगे ? वे लोग क्या समझेंगे और क्या आनन्द लेंगे ? मैं तुमसे फिर कहता हूँ कि जिस अध्यात्म विद्या का ऋषि आदर करते थे, वह विद्या निन्दनीय कैसे हो सकती है ? कोई व्यक्ति निन्दनीय हो सकता है। कोई वक्ता निन्दनीय हो सकता है। कोई श्रोता निन्दनीय हो सकता है। हो सकता है कि श्रोता ही योग्य न हो। वह अनधिकारी भी हो सकता है। वह गलत सुनता हो और लोगों को गलत बता पाता हो; सही नहीं कह पाता हो। किन्तु, इससे कथा बुरी नहीं कही जा सकती।

भगवान की कथा तो सदा ही पवित्र है। वह सदा ही कल्याण-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कारी है। कहने वालों का ढंग ऐसा हो सकता है कि वह तुम्हारे मन को बुरी लगे। पर यह तो कहने वाले की शैली का दोष है। भगवान की कथा तो निर्दोष है। उनके चरित्र निर्दोष हैं। उनका जीवन, उनकी लीलाएँ और उनका अस्तित्व मंगलमय है। इसलिए, उनका जीवन, उनके कार्य, उनकी वाणी, उनका स्वरूप सब-कुछ मंगलमय है। तुम उनके बारे में जो कुछ भी सुनोगे, वह सब मंगलमय ही होगा।

लोग भगवान का नाम जपते हैं। भगवान का कुछ भी अमंगलमय नहीं है; सब मंगलमय ही है। इसीलिए, जो भगवान के भक्त हैं, वे भी मंगलमय हो जाते हैं। भगवान को तत्त्वरूप से जानने वाले, उनकी कथा सुनाने वाले और सुनने वाले सब मंगलमय और आदरणीय हैं। सच तो यह है कि जो लोग श्रद्धा से भगवान की कथा सुनते हैं, उनके प्रति हमारा दिल भी झुक जाता है कि देखो! इन लोगों का कितना अच्छा दिल है, जो श्रद्धा से भगवान की कथा सुन रहे हैं। लोगों का अन्य कथाओं में, इधर-उधर की गपशप में मन लगता है; प्राय:, भगवान की कथा में तो मन ही नहीं लगता।

मठाधीश भगवान की कथा कम ही करते हैं। वे मठों की कथा कर सकते हैं; पदों की कथा कर सकते हैं। वे भगवान की कथा करेंगे भी क्या? यदि वे भगवान की कथा करेंगे, तो उनकी दुकानदारी का खण्डन होगा। इसलिए, वे भगवान की कथा न करके, अन्य कथाओं में ही ज्यादा अभिरुचि रखते हैं। उन्हें लगता है कि उनके जैसा सुधारक कोई नहीं है। उनको यही लगता है कि वे ही दुनियाँ का भला कर रहे हैं। उन्हें यह लगता है कि वेदान्तियों ने, इन शिवोऽहम् वालों ने तो बेड़ा ही गर्क कर रखा है। इन लोगों ने ही समाज को बिगाड़ रखा है। लोगों को सुधारने का सारा ठेका तो मठाधीशों ने ही ले रखा है। ऐसा उन लोगों को लगता है।

अहंकारी व्यक्ति का स्वभाव ही यह होता है कि उसे अपनी

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

बात और अपने सिद्धान्त ही अच्छे लगते हैं। उसे अपनी चीज प्रिय और दूसरे की चीज अप्रिय लगती है। यह अहंकार की ही लीला है। बड़े-बड़े पवित्र लोगों को देखा है। थाली अच्छी तरह साफ कर देने के बाद भी, वे मेहतर की खाई थाली में नहीं खा सकते; क्योंकि, मेहतर टट्टी उठाता है। लेकिन, अपने टट्टी धोए हाथों से वे आटा गूँथ सकते हैं, पानी ले सकते हैं और नहा सकते हैं। उन हाथों को मुंह पर भी लगा सकते हैं।

छुआछूत वालों ने बहुत उपद्रव किया है। हिन्दुस्तान में पूरा का पूरा एक समुदाय है। छुआछूत मानने वालों का बड़ा जोरदार समर्थन है। लेकिन, वे बच एक दिन भी नहीं सकते। किस-किससे बचेंगे? अपने से तो बच नहीं पाएँगे, दूसरों से चाहे बच जाएँ। भगवान ने सब जगह ऐसा इन्तजाम कर दिया है कि छुआछूत मानने वाला कोई भी पण्डित नहीं रहेगा। ऐसा एक भी पण्डित नहीं रह पाएगा। भगवान ने पहले ही ऐसा इन्तजाम कर दिया है कि पण्डितों की पण्डिताई सुबह-शाम मिट जाती है। अरे! कोई ज्यादा देर का मेहतर, कोई थोड़ी देर का मेहतर। क्या कोई पण्डित ऐसा है, जो बिल्कुल मेहतर न हो और क्या कोई ऐसा मेहतर है, जो कुछ देर को पण्डित न हो जाता हो? मेहतर भी अपने हाथ धोता है और नहाता है। संसार तो ऐसा ही है। पूरा कोई पण्डित नहीं; पूरा कोई मेहतर नहीं।

भगवान ही पूरा शुद्ध है, वह कभी अशुद्ध नहीं है। भगवान ही ब्राह्मण है और कोई पूरा ब्राह्मण नहीं। भगवान ब्राह्मण हैं और तत्त्वज्ञानी ब्राह्मण हैं। शरीराभिमानी पूरा ब्राह्मण हो ही नहीं सकता। तुलना में तो हो सकता है; लेकिन, पूरा ब्राह्मण कैसे हो जाएगा? पूरा ब्राह्मण तो ब्रह्म ही है। क्योंकि, उसमें कभी दोष नहीं; उसमें कभी स्पर्श नहीं, उसमें किसी भी अपवित्रता का स्पर्श नहीं। हाथ में अपवित्रता तो सबके लगती है। कोई सफाई से धोता

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है और कोई बेढंगेपन से धोता है। कोई ठीक से साफ कर डालता है; कोई कम साफ करता है। किसी-किसी के तो नाखूनों में भी गन्दगी रह जाती है।

आजकल कई लड़कियाँ तो शूर्पणखा ही बन गई हैं,—

'शूर्प इव नखानि यस्या सा शूर्पनखा।'

जिसके सूप के समान नख हों, उसे शूर्पणखा कहते हैं। अब तो घर-घर में शूर्पणखाएँ बड़े-बड़े नाखून रखती हैं। हमने एक लड़की से पूछा कि जब शौच जाती हो, तो काहे से धोती हो? उसने कहा हाथ से। हमने कहा नाखूनों का क्या हाल होता है? उनकी सफाई कैसे करती हो? उसने कहा साबुन से हाथ धोते हैं। लेकिन, साबुन लगाने पर भी नाखून अन्दर से साफ नहीं हो पाते। उन्हीं हाथों से वे रोटियाँ बनाती हैं; सबको परोसती हैं और खिलाती हैं।

तुम्हारे समाज में ये नकल करने वाले, बुद्धिजीवी और पढ़े-लिखे लोग हैं। क्या उनकी दृष्टि में दिमाग की कोई कीमत नहीं है। दिमाग वह है, जो दिखावे से मुक्त होता है। दिखावे से मुक्त होकर, अपने जीवन में सच्चाइयाँ लाओ; सादगी लाओ। हमारी संस्कृति 'सादा जीवन, उच्च विचार' पर विश्वास करती है। विचार महान् होने चाहिए। ये ऊपर का आडम्बर और दिखावा नहीं होना चाहिए। इसलिए, आप लोग आत्मा की कथा सुनो।

उपनिषद् कहते हैं कि आत्मा सबमें है। देखो! मिट्टी का दर्शन घड़े में होता है। घड़ा अपने-आप में मिट्टी को अनुभव कर सकता है और सबमें मिट्टी को स्वीकार कर सकता है। क्यों? क्योंकि, उसे यह मालूम है कि सारी चीजें मिट्टी से बनी हैं। इस आधार पर वह सबमें मिट्टी को स्वीकार करता है।

यह सारा संसार एक में ही हुआ है; एक से ही हुआ है और एक में ही रहता है। यदि सौ घड़े, एक ही मिट्टी के बनाए गए हों और मिट्टी को यह मालूम हो कि सब एक ही मिट्टी के बनाए गए

 Digitization by American Academy of Indic Studies- AAIS(USA)

हैं; तो जो एक घड़े में होगा, वही सबमें होगा। यदि घड़ा अपने भीतर यह जान ले कि वह मिट्टी में है, मिट्टी का है, मिट्टी से अलग नहीं है और मिट्टी में ही उसका स्वरूप है; तो जब मिट्टी उसका स्वरूप है, तो वही सबका स्वरूप है और वह सबमें है।

इसी तरह से इस शरीर, बुद्धि, अन्तःकरण और इन्द्रियों का दृष्टा एक है। वह साक्षी, चैतन्य, निर्गुण और निर्विकार है। इसका दृष्टा, इसका साक्षी जो है, यही सबका साक्षी है। जो सबका है, वही इसका है। जो सबका आत्मा है, वही मेरा आत्मा है। जैसे घड़ा क्या निश्चय करेगा ? जो सबका आत्मा है, वही मेरा और जो मेरा है, वही सबका। इसे दो तरह से सोचना है। जो सबका आत्मा है, वही मेरा है और जो मेरा आत्मा है, वही सबका है। इसलिए, जो सबका होगा, वही मेरा होगा और जो मेरा होगा, वही सबका होगा। इसमें जो चेतन है, इसमें जो राम है, वही राम सबमें है।

जो सत्य सबमें है, वही सत्य इसमें है और जो सत्य इसमें है, वही सत्य सबमें है। लोग यही मानने को तैयार नहीं हैं; बाकी तो सब ठीक है। जो नियम मेरे लिए है, वही सबके लिए है। जैसे यह शरीर जन्म के, जवान होके, बूढ़ा होता है; ऐसे ही सब शरीर होते हैं। जैसे सब होते हैं, वैसे ही यह होगा। सब तो बूढ़े होते हैं और होंगे, सिर्फ मैं नहीं होऊँगा ? मैं होता हूँ, तो सबको होना पड़ेगा। यदि मैं नहीं मरता हूँ, तो और भी नहीं मरते होंगे। मैं मरता होऊँगा, तो और भी मरेंगे। जो मैं हूँ, सो तुम हो। जैसा तुम्हारा नियम है, वैसा ही सबका नियम। ब्रह्माण्ड का नियम एक है। इसलिए, सबमें सत्य एक है, सबमें कल्पित एक है। कल्पित भी सबका एक जैसा है।

दृश्य भी सबका एक जैसा, दृष्टा भी सबका एक जैसा और बुद्धियाँ भी सबकी एक जैसी हैं। बस इतना ही है कि इसको विचारने भर का फर्क है। इसलिए, भगवान कहते हैं—

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

**'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥'**

मेरे-तेरे बहुत जन्म बीत गए हैं। भगवान कहते हैं कि 'मेरा जन्म नहीं होता'। अर्जुन को भी समझाते हैं कि उसकी आत्मा का भी कभी जन्म नहीं होता। यद्यपि, अर्जुन भी कभी नहीं जन्मा और भगवान भी कभी नहीं जन्मे; फिर भी यह बता रहे हैं कि,—

'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।'

'तेरे भी बहुत जन्म हुए हैं'। भगवान यह जरा भी नहीं कहते कि उनके नहीं हुए, अर्जुन भर के हुए हैं। वे पक्षपात रहित होकर कहते हैं 'अर्जुन तेरे और मेरे दोनों के बहुत जन्म हुए हैं। अर्जुन ! तू भी कभी नहीं जन्मा और मैं भी कभी नहीं जन्मा।' दोनों बातें कहते हैं। 'अर्जुन तुम भी अजन्मा हो और मैं भी अजन्मा हूँ। तू भी जन्मा है और मैं भी जन्मा हूँ। यदि कल्पित दृष्टि से देखेगा, तो मेरे भी बहुत जन्म हुए हैं। तेरे ही नहीं हुए, मेरे भी हुए हैं। पर, मैं इस राज को जानता हूँ; तू नहीं जानता। बस इतनी सी बात है। अर्जुन ! यदि इस राज को तू भी जान ले, तो तेरे में और मेरे में कोई फर्क नहीं है। तेरे और मेरे में बस इस न जानने का ही फर्क है। इतने के लिए ही मैं तुझे यह जनाना चाहता हूँ कि तेरे और मेरे में जो फर्क तुझे लगता है, मुझे तो लगता नहीं है। मुझे तो तेरे में और अपने में कोई फर्क नहीं लगता। पर, तुझे अपने में और मेरे में फर्क लगता है। इसलिए, तू जान ले, जिससे तुझे भी फर्क नहीं लगेगा'।

अविवेकी के मन में फर्क है। ज्ञानी के मन में फर्क नहीं है। भगवान कृष्ण ने हमको यही सन्देश दिया है। मैं तुमको भी कहता हूँ कि जिस समय तुमको एक चैतन्य के सिवाय सब कल्पित लगे, तब तुम भी उस स्थिति को प्राप्त कर लोगे, जिसकी बात भगवान कृष्ण कर रहे हैं।

स्वप्न में एक चैतन्य सच और सारा स्वप्न कल्पित होता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कल्पित को ही स्वप्न कहते हैं। स्वप्न को ही हम कल्पित कहते हैं। कल्पित चाहे घड़ा हो, चाहे मकान हो, चाहे लहर हो, जो एक सत्य में अनेक जैसा दिखता है, उसे कल्पित कहते हैं। सत्य एक होता है; बाकी सब स्वप्न और उसी को कल्पित कहते हैं।

एक चैतन्य तत्त्व में, स्वप्न में अनेक सत्य दिखते हैं। जबकि सत्य, एक चैतन्य ही होता है; साक्षी, अधिष्ठान, आत्मा ही होता है। बाकी वहाँ न पेड़, न पहाड़, न कल्पना; कहीं कुछ भी नहीं होता। लेकिन, चैतन्य एक माया से ही सब दिखा देता है। चेतन सत्य, अनेक तरह से प्रतीत होने लगता है। यही उसकी योगमाया है; यही चैतन्य की महिमा है। वह रोज अभ्यास नहीं करता। वह योगी नहीं बना है। कुछ लोग योगाभ्यास से चमत्कार प्राप्त करते हैं। लेकिन, इस आत्मतत्त्व को शुरू से ही योगसिद्ध है। यह सब कुछ करके दिखाता है।

नट, सीखकर, चालाकी, फरेब और परिश्रम से कलाबाजी दिखाता है। लेकिन, यह चेतन तत्त्व, स्वभाव से ही सिद्ध है, स्वभाव से ही योगी है। इसलिए, यह स्वप्न में अपनी ही योग-माया से, योग-शक्ति से, अनेक तरह का दिख जाता है; अनेक दिखा देता है और स्वयं अनेक हो जाता है। स्वप्न में मरता-जन्मता, लाभ-हानि के लिए हँसता-रोता, सब दिखा देता है। लेकिन, वहाँ जागो, तो कुछ भी नहीं होता। एक चेतन का चेतन होता है। यह आत्मा का स्वभाव है।

जाग्रतावस्था में भी वही आत्मा है। जिस आत्मा का चमत्कार स्वप्न में हुआ था, उसी आत्मा का यह चमत्कार है। इस जाग्रत में; शरीर, इन्द्रियाँ और संसार की प्रतीति हो रही है। जो चैतन्य तत्त्व है; स्वप्न में जो सत्य है; वही चैतन्यता तो जाग्रत में है। जब जाग्रत और स्वप्न, सभी विचारों का सुषुप्ति में विलय हो जाता है; तब निद्रा होती है। उस निद्रावस्था में भी, वही चैतन्य तत्त्व

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

निद्रा का अधिष्ठान है। एक ही चेतन के आश्रित निद्रा; उसी चेतन के आश्रित स्वप्न; उसी चेतन के आश्रित जाग्रत; अर्थात् बुद्धि की तीनों अवस्थाएँ उसी एक चेतन के आश्रित हैं। इसलिए,—

'जाग्रत स्वप्न सुषुप्ती हैं बुद्धि की अवस्था।
हूँ बुद्धि से परे मैं याते सदा शिवोऽहम् ॥'

मैं बुद्धि से परे हूँ। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे हूँ। इसलिए, मैं योगी हूँ। मैं स्वभाव से मुक्त हूँ। इसलिए, मुझे योगी होना नहीं है; मैं योगी हूँ। जो अन्तःकरण मानकर सोचते हैं, उन्हें योगी होना है। जो अपने को साक्षी जानते हैं, वे योगी हैं। जो आत्मवेत्ता है, वह महान् योगी है। क्योंकि, उसके स्वभाव से सब हो रहा है; उसको कोई फर्क नहीं पड़ता। फर्क लगता भी है, तो बुद्धि में लगता है। चेतन में कुछ फर्क नहीं होता। चेतन में कोई परिवर्तन नहीं होता। वही चेतन तत्त्व तुम हो। लेकिन, यह बात तुम ध्यान में भी नहीं लाते। न सुनके लाओ और न ध्यान में लाओ। ध्यान में भी शिकायत करते हो कि मन नहीं लगता। जबकि हम रोज कहते हैं कि मन को लगाना ही नहीं है। हमें मन से क्या लेना-देना ?

हम घड़े को कहते हैं कि 'तू मिट्टी है।' पगला कहता है कि घड़ा हिलता क्यों है ? हम कहते हैं 'तू अविनाशी है'; तो कहता है कि घड़ा फूट क्यों गया ? हम कहते हैं 'तू पैदा नहीं हुआ'; तो कहता है कि कुम्हार उसे बना देते हैं। हम कहते हैं तत्त्व की बात; वह सुनता है घड़े की बात, कल्पित की बात। घट-बुद्धि से सुनने पर, हमारी बात उसके पल्ले नहीं पड़ती। हम कहेंगे 'तू सदा है'; वह कहेगा फिर मर क्यों जाते हैं ? वह घड़ा बनकर सोचता है। उसको यही समझ में आता है कि 'हम फूट जाएँगे, हम नहीं रहेंगे, हम बनाए गये हैं, हम छोटे हैं'। वह मिट्टी है, यह उसे सुनाई नहीं देता और जब तक उसे यह सुनाई नहीं देगा कि वह मिट्टी है; तब तक सारी साधना दो कौड़ी की है। जो भी वह करेगा, उसे उसके

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कर्त्तापन का अहं बाँध लेगा। तू सीमित हो जाएगा। तू कर मत, तू देख। तेरे में घड़ा बना है; तेरे में घड़ा रहता है और तेरे में घड़ा फूटता है। तू यह क्यों कहता है कि 'मैं फूटता हूँ'? यह क्यों कहता है कि 'मैं पैदा होता हूँ'? तू जान ले कि मिट्टी हूँ। फिर कह कि 'मैं ही घड़ा बनकर पैदा हुई हूँ; मैं ही घड़ा बनकर जी रही हूँ और मैं ही घड़ा बनकर फूटती हूँ'। पर, मैं ज्यों की त्यों हूँ। यही योग है। भगवान कहते हैं—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥

'अर्जुन मेरे बहुत जन्म हुए और मैं जन्मा नहीं। मेरे जन्म तो बहुत हुए, पर मैं अजन्मा हूँ। मैं मरा तो बहुत बार, पर अविनाशी हूँ। मैं दिखता तो सीमित हूँ, पर असीम हूँ। सीमित बना, पर असीम भी बना रहा। कौन बना रहा? अस्तित्व, सत्य। सत्य सीमित बनकर दिख जाए, अनेक बनकर दिख जाए, तब भी दिखता एक ही रहता है। वह एक अर्जुन तू ही है।'

अर्जुन ने कुरुक्षेत्र में सुना था और कृष्ण ने सुनाया था। मैं तुम्हें यहाँ सुनाता हूँ और तुम सुनते हो कि 'वह तुम हो'। अब कृष्ण तो सुनाने आएँगे नहीं और यदि आएँगे, तो तब तक तुम रहोगे नहीं। तुम इस देह से सुनने आए हो। यदि, इस देह से सुनना है, तो अभी मौजूदगी में ही सुनना होगा। उस समय भी जिन्होंने सुना था, वे देह से मौजूद रहे होंगे; उन्होंने ही सुना होगा। आगे जो सुनेंगे, वे भी मौजूद रहने वाली देह से ही सुनेंगे और मौजूद रहने वाली देह वाले ही सुनाएँगे।

मर जाने वाले न सुना सकते हैं, न सुन सकते हैं। इसलिए, मर जाने वाले शिष्य का गुरू उद्धार नहीं कर सकता। मर जाने के बाद, गुरू भी किसी को तार नहीं सकता। मर जाने वाले चेलों को भी कोई गुरू तार नहीं सकता। यहाँ तो जिन्दा सुनें और जिन्दा ही

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सुनाएँ। शरीर रहते सुनो और शरीर रहते ही सुनाओ; तो उद्धार होता है। कृष्ण रहते हैं और अर्जुन को बताते हैं। राम रहते हैं और तारा को तारते हैं। आज, कृष्ण किसी का शोक निवृत्त करने नहीं आते। आज लाखों आदमी हैं, पर कृष्ण का देह नहीं है। इसलिए, वे नहीं सुना सकते।

भक्त ज्यादा हैं, उनको कम समझ में आता है। ज्यादा जो होते हैं, सब बेवकूफ होते हैं। ज्यादा चाहे ध्यानी हों; ज्यादा चाहे भगत हों; सब एक से ही होते हैं। एक आदमी बोला—सवा सोलह आने सत्य। हमने कहा—झूठ। क्योंकि, सत्य तो सोलह आने ही हो सकता है; सवा सोलह आने हो ही नहीं सकता। सत्य, बीस आने कैसे हो जाएगा ? क्या सत्य में भी छोटा-बड़ा होता है ?

ऋषिकेश में एक सत्संगी हमारे पास आया करते थे। सच्ची कथा है। उनसे काफी देर बातचीत हुई। पहले दिन बोले समझ में नहीं आया। दूसरे दिन फिर सत्संग चला, तो बोले आठ आने समझ गये। तीसरे दिन बोले, बारह आने समझ गये। चौथे दिन बोले, चौदह आने समझ गये। फिर पन्द्रह आने समझ गए, फिर साढ़े पन्द्रह आने समझ गये, फिर पौने सोलह आने समझ गये। जब उनने यह कहा कि पौने सोलह आने समझ गये, तो एक सन्त हँसकर बोले "अभी तुम दो कौड़ी भी नहीं समझे; क्योंकि, कभी पौने सोलह आने समझा ही नहीं जा सकता। पौने सोलह आने में तो पूरा गलत भी हो सकता है। पौने सोलह आने उम्मीद है कि मैं पास हो जाऊँगा और रिजल्ट निकला तो फेल हो गए। पौने सोलह आने गये। अरे भाई ! पौने सोलह आने सच नहीं होता। सच तो पूरे सोलह आने होता है और झूठ भी पूरे सोलह आने ही होता है"। यदि तुम अविनाशी हो, तो सोलह आने अविनाशी हो। क्या बारह आने अविनाशी या बारह आने ब्रह्म और चार आने जीव हो सकते हो ? क्या चार आने ब्रह्म और बारह आने जीव हो ?

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

ब्रह्म कितना ? आठ-आठ आने ? यह आधे-आधे का मसला कैसा ? इसलिए, यह मत सोचो कि तुम थोड़े-थोड़े कुछ होगे। जो कुछ होगे, पूरे होगे; कभी अधूरे नहीं होगे। यदि, आदमी हो, तो पूरे आदमी हो।

आधा साँप और आधी रस्सी कभी नहीं होती। समझाने वाले तो कहते हैं कि रस्सी का साँप होता है। रस्सी का साँप कभी नहीं होता। जब तक नहीं देखा था, तब तक साँप था और जब देखा तो रस्सी दिखी। रस्सी का साँप किसी ने नहीं देखा। जब देखी तब रस्सी देखी। जिसने साँप देखा, उसने रस्सी नहीं जानी; जिसने रस्सी जानी, उसने साँप नहीं देखा। रस्सी का साँप कहने की बातें हैं।

जो अजन्मा हैं, उनमें जन्म की कल्पना क्यों ? जो जन्मे हैं, उन्हें अजन्मे का पता ही नहीं है। यह तो बात ही बड़ी निराली है। इसलिए, जो जन्मरहित हैं, उन्हें जन्म की कथा करना, बड़ा ही मुश्किल लगता है और जो जन्मे हैं, उन्हें अजन्मा की कथा सुनना बहुत मुश्किल लगता है। जन्मे आदमी, अजन्मा की कथा कैसे सुनेंगे ? सुनाने वाले यह जानते ही नहीं हैं और जन्मे आदमी को, जन्म से छुटकारे की कथा सुनाते हैं। उन्हें कथा इसीलिए सुनाते हैं कि सुनकर वे भी जन्म-मरण से छूट जाएँ। उनकी मुक्ति हो जाए। पर, यह बात भी झूठ लगती है। छूट क्या जाएगा ? मुक्त को क्या मुक्त करोगे ? अजन्मा को क्या अजन्मा बनाओगे ?

इसलिए, जन्मने वाले से छुटाएगा कौन ? और जो छूटा है, उसे बाँधेगा कौन ? गड़बड़ तो यही है कि समझ का हेर-फेर है। समझ का हेर-फेर है और करना-कराना कुछ नहीं है। यह समझ का हेर-फेर, सत्संग से ही जाएगा; सफाई से नहीं जाएगा। कितने दिन गंगा नहाओगे, तो समझ का फेर चला जाएगा ? कितने दिन बाबाओं की चढ़ोतरी करोगे, तो समझ का फेर मिट जाएगा ?

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कितने भण्डारे करोगे, तो यह समझ का फेर मिट जाएगा ? समझ का फेर तो सत्संग से ही मिटेगा। समझ का फेर तो समझ से ही मिटेगा। वह कुछ करने से नहीं मिटेगा। क्योंकि—

'यह गुन साधन तें नहिं होई, तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई।'

यह साधन का विषय नहीं है; किन्तु, समझने का है। समझने के लायक बुद्धि हो, तभी समझ में आता है। स्वप्न में सत्य कुछ नहीं था; साक्षी अकेला सत्य था। अब जग के क्या सत्य है ? यदि तुमको जगाया न जाता, तो साक्षी, स्वरूप, स्पष्ट नहीं होता। पहले जागोगे, तब जानोगे कि पहले जानोगे, तब जागोगे ?

'उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान् निबोधत
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस् तत् कवयो वदन्ति।'

जब तुम्हारी बुद्धि शान्त हो, समाहित हो; विचार, कल्पना के ऊपर हो; तभी जानोगे।

'न शान्तः न समाहितः।'

मन न शान्त है, न समाहित है। जिनका मन बिखरा है, वे यह प्रवचन सुनकर भी नहीं जान सकते। इसलिए, हम चित्त को समाहित करने के लिए कहते हैं। ध्यान, लक्ष्य नहीं है। ध्यान, जनाने का साधन है। ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती—

'ऋतेज्ञानान्न मुक्ति।'

बिना ध्यान, योग के ज्ञान नहीं होता। बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती। इसलिए, जब तक बुद्धि शान्त और समाहित नहीं होगी, तब तक आत्मा का अनुभव करने में तुम समर्थ नहीं हो सकते। जब तक आत्मा के अनुभव में तुम समर्थ नहीं होगे, तब तक मुक्ति नहीं होगी; शान्ति नहीं होगी। चित्त के, मन के विचार नष्ट नहीं होंगे और कामनाओं की जड़ नहीं उखड़ेगी।

कामनाओं की जड़ कब खतम होगी ? जब तुम अपने को मन नहीं जानोगे; अपने को तन नहीं जानोगे। अपने को तन जानने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वाले लोग, मरने के भय से भरे रहेंगे। अपने को मन जानने वाले लोग, निर्विकारता की इच्छा करते रहेंगे। अपने को बुद्धि जानने वाले लोग, ज्ञानी और अज्ञानी होते रहेंगे। एक बार आत्मा का ज्ञान होने पर, जन्म-मरण, ज्ञान-अज्ञान और सुख-दुःख से मुक्त होकर, इनको अपना धर्म न जानकर, अपने स्वधर्म को प्राप्त करके; व्यक्ति कृत-कृत्य हो जाते हैं। इसलिए, आप लोग भी कुछ न करें।

यह मिट्टी या घड़ा कुछ न करे; सिर्फ देखे कि घड़ा टूटता है क्या ? घड़ा अभी तक सोचता था कि 'मैं टूटूँगा; मैं मरूँगा; मैं मिटूँगा; मैं नहीं रहूँगा।' अब, जब घड़ा टूटे, तो केवल इतनी दृष्टि और रखनी है कि वह यह कहे कि घड़ा नहीं रहेगा, 'वह' रहेगा। क्योंकि, 'वह' अस्तित्व है; 'वह' घड़ा नहीं है। वह इतना सोचे कि यह मिट रहा है; 'वह' मौजूद है। यह मिट गया, 'वह' मौजूद है। यह मिट जाएगा, 'वह' मौजूद रहेगा।

जो होता जाए, उसको जानते जाओ और अपने को बचाते जाओ। सबको मारते जाओ। और होता भी ऐसे ही है। सब मरता जाता है; तुम बचते जाते हो। पर, तुम्हारी नजर मरने वाले पर, बदलने वाले पर, बिगड़ने वाले पर है; बचने वाले पर तुम्हारा ध्यान नहीं है। ध्यान का मतलब है कि जो वहाँ मौजूद रह जाता है, उस पर ध्यान दो। जो नहीं रहा, उस पर ध्यान ही न दो। चाहे जगत न रहा हो, चाहे प्रकाश न रहा हो, चाहे गुरू न रहा हो, चाहे भगवान न रहा हो और चाहे नाम न रहा हो। जो न रहा हो, वह असत्य है। जो न रहा हो, वह कल्पित है। जिसको रहने न रहने का पता चलता है; वह साक्षी है। जो साक्षी है, वह तू है; जो नहीं रहा, वह कल्पित है। यह ध्यान का ढंग है।

तुम चल को पकड़ने में लगे हो; अचल पर ध्यान ही नहीं देते। चल को रोकने में लगे हो; चल को ठहराने में लगे हो। अचल पर तुम्हारा ध्यान ही नहीं जाता। वृत्तियाँ चल हैं। तुम किसी वृत्ति

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

को क्यों टिकाते हो ? किसी देह को क्यों टिकाते हो ? किसी दृश्य को क्यों टिकाते हो ? अभी इतना भी तुम्हारी समझ में नहीं आया कि शुरू में कहीं पर टिक लो ? यदि टिकना ही है, तो शुरू में टिक लो। पहले इन्द्रियों में टिको; फिर मन में टिको; फिर श्वास में टिको। जब कुछ देर टिक लो और फिर न टिक पाओ; तो बाद में इसको भी कहना कि यह भी टिकने वाला नहीं है। देखो ! जहाँ पहुँचोगे ही नहीं, वहाँ का हिसाब कैसे बताएँगे ? फिलहाल अभी स्थूल में हो, तो स्थूल देह को टिका लो।

जब हम कहें कि ठहर जाओ, तो कहाँ ठहरोगे ? तन में ठहरोगे; क्योंकि, अभी तक तुम तन ही हो। जब हम कहेंगे कि ठहर जाओ, तो जो मन में होंगे, वे मन में ठहर जाएँगे। कुछ दिन बाद तुम शिकायत करोगे कि तन में ठहरते-ठहरते तो दर्द हो जाता है। अब क्या करें महाराज ? हम कहेंगे कि कल से तन को छुट्टी दे दो। फिर तुम कहोगे कि मन से तो तुम ठहरते हो, पर कुछ देर के बाद मन चंचल हो जाता है। हम कहेंगे कि मन को भी छुट्टी दे दो; क्योंकि, मन स्थिर नहीं रहता।

जो नहीं रहता, उसको नहीं रखना है। लेकिन, जो रहता है, उसकी भी प्रार्थना नहीं करनी है। उसको रखना नहीं है; वह तो रहता ही है। तुम्हारा ध्यान केवल न रहने वालों में उलझा हुआ है। रहने वाले का ध्यान ही नहीं है। वृत्तियाँ चल हैं, अचल राम हैं; अचल कृष्ण हैं; अचल शिव हैं; अचल ब्रह्म है। इसलिए, अचल को जानो, तो जीवन कृत-कृत्य हो जाएगा। □

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मो को लगे न रंचक रेख

विषय-ज्ञान सुषुप्ति के अतिरिक्त होता ही रहता है। जब तक हम गहरी नींद में नहीं होते, तब तक हम अपने अलावा, अपने अतिरिक्त, कुछ-न-कुछ देखते रहते हैं। मैं जिन वस्तुओं को, जिन चीजों को देखता हूँ; उन देखे हुए, जाने हुए विषयों के बारे में दो विभाग करता हूँ—'मैं' और 'मेरा'। देखे हुए पदार्थों में ही, तू और तेरे की बुद्धि करता हूँ।

आप इस बात पर ध्यान देंगे कि जब अन्तःकरण की वृत्ति जाग्रत हो जाती है, तभी हम देह का दर्शन करते हैं। जन्म के पहले की स्थिति छोड़ो, मृत्यु के बाद की स्थिति भी छोड़ो, वर्तमान में अभी-अभी देखो, जब तुम्हारी निद्रावस्था थी। जन्म के पहले तुम क्या थे? इसमें तुम्हें संशय है। मृत्यु के बाद तुम क्या होगे और कहाँ जाओगे? इस पर भी तुम्हें संशय रहता है। किन्तु, अभी-अभी देखो; जरा-सी भी गड़बड़ी नहीं करोगे, तो तुम्हें मालूम पड़ेगा कि जब निद्रावस्था थी, जब तुम्हारी बुद्धि और इन्द्रियाँ सुप्त हो गईं थीं, तब तुम्हें देह का भान नहीं था। उस समय देह का भान नहीं था और साथ ही अहं ज्ञान कि 'मैं हूँ', इस तरह का भी कोई विचार नहीं था। 'मैं हूँ' इस विचार के उदय होने के पहले यह 'मैं हूँ' या यह बैठा हुआ देह, यह हड्डी-मांस का और पंचभूतों का बना देह ही निद्रावस्था में नहीं भासता था।

भिन्न-भिन्न मजहबों की उपासना पद्धतियाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती हैं; किन्तु, जब ज्ञान की बात आती है, तो पक्षपात-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रहित होकर देखना पड़ेगा। उदाहरण के लिए हम किसी जाति के लोगों को, किसी जाति के वृक्षों को या किसी जाति के पशुओं को ले सकते हैं। प्रश्न केवल किसी व्यक्ति या मनुष्य का ही नहीं है। जितने भी शरीर जन्मे हैं, चाहे वे वृक्षों के हों, चाहे वे पशुओं के हों, चाहे वे पक्षियों के हों और चाहे वे आदमियों के हों; उन सबके शरीर, जन्मने के बाद जवान होते हैं अर्थात् बढ़ते हैं। कुछ दिनों के बाद वे वृद्ध हो जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। पेड़ भी बूढ़े होते हैं। पेड़ भी जवान होते हैं; पशु भी जवान होते हैं और आदमी भी जवान होते हैं। ये वृद्ध भी होते हैं; इसलिए, यह किसी जाति वीशेष का धर्म नहीं है। यह किसी खास सम्प्रदाय का सिद्धान्त नहीं है। यह नेचर का लॉ है। यह प्रकृति का कानून है। यह सब पर लागू होता है।

इसमें थोड़ा-थोड़ा फर्क भी पाया जाता है। वृक्षों में बुद्धि जाग्रत नही होती; सोई ही रहती है। पशुओं, पक्षियों और मनुष्यों में अन्तःकरण जग भी जाता है और सो भी जाता है। इस फर्क के कारण ही, हम लोग वृक्षों से भिन्न हैं। यदि हमारे भी बुद्धि न जगती, तो हमें भी पता न होता कि हम क्या हैं? बुद्धि जब पैदा हो गई, तब हम सोच पाए कि हम क्या हैं? पशुओं को भी बुद्धि आई। पेड़ों को तो बुद्धि आई ही नहीं।

नियम सबके लिए एक ही है। पशु, पक्षियों और वृक्षों की देहों का और उसके पीछे प्रक्रिया का आधार भी वही परब्रह्म परमात्मा है, जो हमारे जीवन का आधार है। किन्तु, वृक्षों में बुद्धि न आने से, उन्हें अपने वृक्ष होने का भी भान नहीं होता; ब्रह्म होने के भान का तो सवाल ही नहीं है। पशु-पक्षियों के अन्दर जब बुद्धि आई और अन्तःकरण जाग्रत हुआ, तो वे जागे, जीए और उन्हें लगने लगा कि वे चलते हैं, खाते हैं और पीते हैं।

यह बुद्धि जानवरों में भी है। आदमियों में भी बुद्धि है।

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

आदमियों के पास भी पहले वही बुद्धि होती है, जो जानवरों के पास होती है। किन्तु, मनुष्य की बुद्धि में इतनी विशेषता होती है कि वह इस देह के धर्मों को छोड़कर, परमात्मा के धर्मों के साथ जीवित रह सकता है; जाग सकता है। जगकर सहज ही हम देह के धर्म में जीने लगते हैं। जब से जागे, तब से इसी शरीर को 'मैं' समझा और 'मेरा' समझा। जन्मे, जीए, बढ़े, बूढ़े हुए और मरे। यही हमारे जीवन का निजी अनुभव है। सभी आदमियों को जन्म से यही ज्ञान है। जगने से लेकर सोने तक, यही निश्चय है; यही सूझ-बूझ है। इसलिए, यह ज्ञान भी स्वाभाविक ज्ञान है। जन्म के बाद जवान होना, बूढ़ा होना और मरना भी स्वाभाविक है। सबके साथ ऐसा ही होता है।

यह अनुभूति, स्वभाव से सभी को होने लगती है। इसके लिए शास्त्रों की या गुरू की जरूरत नहीं है। यदि तुमको कोई गुरू नहीं मिलता, तब भी तुम यह समझते कि तुम आदमी हो। कोई गुरू नहीं मिलता, तब भी तुम दुबले-मोटे का, शक्तिशाली और कमजोर का, जवान और बूढ़े का, विश्राम और थकने का फर्क समझते। जानवर भी थकते हैं। जब बैल हल से जमीन जोतते हैं, तब वे भी थकते हैं। उन्हें भी यह लगता होगा कि अब न चलें और कुछ देर आराम कर लें। जब भूख लगती है, तब मालूम पड़ता है। इसलिए, इस ज्ञान को हम पुरुषार्थ नहीं कहते। इस तरह का जो ज्ञान होता रहा है, उस ज्ञान के लिए किसी पुरुषार्थ की जरूरत नहीं होती।

वस्तुतः, यह ज्ञान ही तुम्हें दुःख दे रहा है। मान लो कि तुम जन्म से पेड़ की तरह होते और बुद्धि ही न होती, तो आप क्या होते? यदि तुमको शरीर का पता ही न चलता, तो आप क्या सोचते? यदि नहीं सोचते, तो दुःख क्या था? सोच न पाने के कारण, वे पेड़ होने का अहसास नहीं करते। वे मर जाएँगे, यह ख्याल भी उन्हें नहीं आता। हम नहीं मरेंगे; हम मुक्त हैं; हम अमृत हैं; हम

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आनन्दमय हैं; हम एक जीवन्त सत्ता हैं; हम ब्रह्म हैं; ऐसा कोई अनुभव पेड़ों को नहीं होता। हरिद्वार के पेड़ तो कदाचित् ऐसा अनुभव कर सकते हैं ? यह मैं इसलिए पूछ लेता हूँ कि शायद हरिद्वार में कोई खास विशेषता हो।

अच्छा यह बताओ कि किस देश के पशु ब्रह्म का विचार कर सकते हैं ? यदि करना चाहें और संग मिले, तो किस देश के और किस जाति के आदमी ब्रह्म का विचार नहीं कर सकते ? यदि करना चाहें, सुयोग बन जाए और रुचि हो; तो कौन-सी जाति के इन्सान परमात्मा को नहीं जान सकते ? देखो ! कोई भी पशु परमात्मा को नहीं जान सकता। वृक्ष तो परमात्मा को जानने का इरादा ही नहीं रखते। कोई भी मनुष्य, यदि परमात्मा को जानना चाहे, तो जान सकता है।

रामचरित मानस की निम्न चौपाई इसी तथ्य को प्रतिपादित करती है—

'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।'

इसमें सबके लिए कहा गया है। हिन्दू और मुसलमान का कोई भेद नहीं किया गया है। यह मनुष्य की देह, चाहे किसी जाति की हो, परमात्मा को जान सकती है। जातियाँ तो लोगों ने बाद में बनाई हैं। कुछ गुरुओं ने तो बड़े खतरे के काम कर डाले हैं। ऐसे खतरे के काम कर दिए हैं कि इन्सानों की जातियाँ ही बना दी हैं। जातियाँ बना के उन्हें बाँट दिया है।

यदि गुरुओं का हिसाब खतम कर दिया जाए, तो सब आदमी, आदमी हैं। वे या तो जीव हैं या ब्रह्म हैं। केवल बुद्धि और विकास का ही फर्क है। चिन्तन का फर्क यह है कि किसी ने अपनी बुद्धि को अच्छे रास्ते पर लगाया है, तो वह अच्छा है और किसी ने बुरे रास्ते पर लगाया है, तो वह बुरा है। हमने अपनी बुद्धि अध्यात्म के रास्ते पर लगा दी है, तो हम इसमें थोड़ा कुशल हो गए हैं।

 Digitization by American Academy of Indic Studies- AAIS(USA)

बुद्धि होती ही इसलिए है कि वह जो चाहे रास्ता चुने। पशु, रास्ते का चुनाव नहीं करते। वे गृहस्थी और विरक्ति का चुनाव नहीं करते।

मनुष्य ने पशुओं में भी संन्यासी और गृहस्थ बना दिए हैं। बिचारे बैल को तो बाबा ही समझो और साँड को गृहस्थ समझो। यह तुम्हारी ही कृपा से है। अपनी अक्ल से तो कोई भी बैल ब्रह्मचारी नहीं रहना चाहता था। लेकिन, लोगों ने उनकी नसें बन्द कर दी हैं। लोगों ने सरकार की नसबन्दी से भी बुरा हाल बैलों का किया है। नसबन्दी में सरकार यह आश्वासन देती है कि सन्तान नहीं होगी, बाकी मौज कर सकते हो। इसलिए, आदमी राजी भी हो जाता है। बैल बिचारे की तो आनन्द की अनुभूति ही नष्ट कर दी जाती है। गाय के प्रति आकर्षण ही न रहे; इसलिए, उसकी नसें ही खतम कर दी जाती हैं।

इस धरती पर ऐसे कई योगी, महात्मा और सन्त हुए हैं, जिनकी नसें किसी ने खराब नहीं की थीं, उनकी नसबन्दी नहीं की गई थी; लेकिन, उनको उसकी आवश्यकता ही नहीं हुई। यह आवश्यकता दो प्रकार का होती है। हमको शरीर के माध्यम से भूख लगने पर रोटी खाने से सुख मिलता है। सर्दी लगने पर ओढ़ने या तापने से त्वचा में सुख की अनुभूति होती है। त्वचा में एक मात्रा तक ही गर्मी-सर्दी अच्छी लगती है; उससे ज्यादा बुरी लगती है। इस प्रकार की आवश्यकताएँ स्थूल आवश्यकताएँ हैं। आनन्द की आकांक्षा से, काम की सुखेषणा व्यक्ति के मन में जाग्रत होती है। यदि हमको ध्यान से आनन्द उपलब्ध हो जाए; भजन से सुख मिलने लग जाए; तो हमारे मन में काम का आकर्षण खतम हो जाता है। जिन लोगों ने भगवान का भजन किया है; भजनानन्द लिया है; ध्यानानन्द लिया है; ज्ञानानन्द लिया है; वे भक्तानन्द हो गए, आत्मानन्द हो गए, ब्रह्मानन्द हो गए। जो ब्रह्म का आनन्द

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लेने लगे, उन्हें विषय का आनन्द लेने की जरूरत ही नहीं पड़ी। इस प्रकार की आवश्यकता सूक्ष्म आवश्यकता कहलाती है।

योगियों के साथ, इसीलिए चरित्र को जोड़ दिया गया है। योगी, चरित्रवान होते हैं; वे व्यभिचारी नहीं होते; क्योंकि जिस आनन्द के लिए लोग दुराचार करते हैं, उस आनन्द की उनके घर में कमी नहीं होती। एक उदाहरण से इस बात को समझाने का प्रयत्न करेंगे। यदि तुम्हारे घर में कुआँ या नल हो और उससे पानी मिल रहा हो; तो क्या तुम बाहर निकल करके पड़ौसियों के नल पर या सड़क के नल पर पानी भरने जाओगे ? यहाँ भी लोगों ने अपने-अपने प्लाटों पर नल लगवा रखे हैं। किसलिए नल लगवा रखे हैं ? इसलिए कि पानी भरने दूर न जाना पड़े। देखो ! कोई भी दूर जाना पसन्द नहीं करता। पर, जब घर में पानी का साधन नहीं होगा, तो प्यासा तो मरा नहीं जाएगा। कहीं-न-कहीं से तो वह जल प्राप्त करेगा ही। ये जो इन्द्रियों के द्वारा विषय का आनन्द लेने वाले लोग हैं; उन बिचारों की भी यही मजबूरी है। जब घर में अभी नल नहीं लगा है; ट्यूबवैल नहीं लगा है; तो वे पानी की बाहर से ही व्यवस्था करेंगे। उन्हें घर का आनन्द नहीं मिलता। उन्हें उस आनन्द का पता ही नहीं है। अब आनन्द के बिना मरेंगे तो नहीं। वे क्या करें ? मरता क्या न करता। उन्हें जहाँ आनन्द मिलता है, वहाँ धक्के खाते फिरते हैं।

प्रकृति की ओर से, स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध भी, दो प्रयोजनों की पूर्ति करता है। एक तो उससे आनन्द की प्राप्ति होती है। दूसरे उससे सृष्टि चलती है। पेड़ में भी फूल आते हैं; फल आते हैं। वहाँ कोई बुद्धि नहीं है, कोई अहंकार नहीं है, फिर भी फूल-फल आते हैं। इसी तरह शरीर में भी जवानी आने पर पुरुषत्व आना और फल लगना स्वाभाविक है। पेड़ों में तो प्रकृति से ही फूल-फल आते हैं। यहाँ प्रकृति और हमारी बुद्धि, दो बातें जुड़ी हुई हैं। आप

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

गहराई से देखेंगे, तो मालूम पड़ेगा कि यदि आपको सन्तान नहीं चाहिए, केवल आनन्द ही चाहिए; तो भी गड़बड़ हो जाती है। प्रवृत्ति आनन्द की होती है और सन्तान अनचाहे ही हो जाती है।

ऐसा भी देखने में आया है कि लोगों को सन्तान की बड़ी कामना होती है। उन्हें आनन्द की नहीं, सन्तान की चाह होती है। कभी-कभी एक स्त्री से सन्तान नहीं होती, तो लोग सन्तान के लिए दूसरा विवाह करते हैं। किसलिए करते होंगे वे दूसरा विवाह? वे आनन्द के लिए नहीं, सन्तान के लिए दूसरा विवाह करते हैं; नहीं तो और क्या प्रयोजन हो सकता है?

प्रकृति ने, मानव को सन्तान के लिए, परम्परा चलाने के लिए, शक्ति दी है। भगवान ने उसके साथ आनन्द भी जोड़ दिया है। हो सकता है कि बहुत-से लोगों के मन में सन्तान की कामना ही उत्पन्न न होती हो। वे सोचते हैं कि सन्तान पैदा करके कौन झंझट में पड़े? ऐसी दशा में तो ईश्वर की सृष्टि ही बड़ी मुश्किल से चल पाती। सृष्टि चल सके; इसलिए, परमात्मा ने उसमें आनन्द भी जोड़ दिया।

मनुष्य के शरीर में मुँह की रचना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। मुँह के अन्दर दाँत होते हैं और जीभ भी होती है। रोटी या खाने की किसी भी चीज को चबाने के लिए दाँत बनाए गए हैं। जीभ में ऐसा पदार्थ लगाया गया है, जिससे भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वादों का बोध होता है। यदि, जीभ में स्वाद-बोध की शक्ति न होती, तो भी रोटी तो खाते ही। जब कार में पेट्रोल डालते हैं, तभी कार चलती है। इसी तरह से, शरीर के चलाने के लिए पेट में भोजन का पहुँचना आवश्यक है। यदि, भगवान जीभ में स्वाद के आनन्द को न जोड़ते, तब भी हम लोग रोटी तो खाते ही।

भूख लगने पर रोटी तो खानी ही पड़ती। पर, भगवान ने एक काम बहुत बुरा किया है। वह काम, जीभ में स्वाद-शक्ति का

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होना है। जीभ को दरवाजे पर बिठा दिया है। वहाँ से पेटरूपी टंकी में, भोजनरूपी डीजल जाता है। यह चेक करती है। मजा आता है, तो कहती है कि और डालो। मजा नहीं आता, तो कहती है कि बस करो। कभी-कभी डीजल की जरूरत भी रहती है; पर, जबान कहती है कि यह वाला डीजल नहीं डालना। कभी-कभी जरूरत न होने पर भी कहेगी कि एक लिटर और डालो। दो गुलाब जामुन और डाल दो। थोड़ी चटनी भी चाहिए। यह खिचड़ी तो बहुत ही स्वादिष्ट है। यदि, भगवान ने जीभ को स्वाद-शक्ति न दी होती, तो शरीर रखने के लिए खाना तो पड़ता ही; पर, आनन्द नहीं मिलता। यह जो खाने का आनन्द मिलता है, वह नहीं मिलता।

मशीन गन्ना पेरती है। गन्ने का रस निकालती है। क्या मशीन को आनन्द आता है? ऐसी ही मशीन लगी होती, जो खटाखट पीसती रहती। रोटी को चक्की में डालती रहती। लेकिन, परमात्मा ने इन्द्रियाँ बनाकर स्वाद के सुख का अनुभव करवाया है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यदि आनन्द न होता, तो फिर जीवन क्या होता? फिर जीवन मशीन जैसा होता है।

मशीन चलती है, उसे कोई आनन्द नहीं आता। मान लो कि प्लास्टिक की एक औरत बनाई जाए और उसके भीतर मशीन लगा दी जाए। उस औरत को प्लास्टिक का ही एक बच्चा पकड़ा दिया जाए। मशीन का बटन दबा दें, तो वह औरत उस बच्चे को खिलाने लगे। क्या उस प्लास्टिक की माँ और प्लास्टिक के बच्चे में स्नेह का कोई सम्बन्ध होगा? क्या उन्हें मजा आएगा? माँ और बेटे में से किसी को भी मजा नहीं आएगा।

यदि, भगवान ने शरीर की जगह सिर्फ मशीन ही बनाई होती और उसमें कोई भोगने वाला, खाने वाला, लेने वाला न बैठा होता; तो आनन्द किसको आता? किसी को नहीं। इसलिए, भगवान ने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इस शरीर में एक भोक्ता बैठा दिया है। वह जबान से, कान से, आँख से और शरीर से कुछ लेता है। वह भोक्ता है। वह इन्द्रियों से रस ग्रहण करके आनन्दित होता है। लेकिन, यह आनन्दित होना तो इसलिए था कि दुनियाँ भी चले और आनन्द भी आए। किन्तु, यह तो इन्द्रियों का गुलाम ही हो गया। एक समय आएगा, जब आँखें चली ज़ाएँगी, कान चले जाएँगे, दाँत चले जाएँगे और यह देह भी चली जाएगी।

जिस जीवन को हम आनन्दरूप समझने लगे हैं; सुखरूप समझने लगे हैं; उस जीवन को ही छोड़कर हम चले जाएँगे। तब क्या होगा ? जब हम सब छोड़ देंगे, तब हमारे साथ क्या होगा ? इसलिए, इसमें बैठे-बैठे, इसमें रहते-रहते, इसमें खाते-पीते, अनासक्त होकर सुख भोगते हुए, हम उसको जानें, जहाँ भोगने की जरूरत नहीं है।

एक वेदमन्त्र में कहा गया है कि दो पक्षी किसी एक पेड़ पर बैठे हैं। एक को, जिसने दुनियाँ बनाई है, किसी चीज की जरूरत नहीं है। उसने दुनियाँ बनाई है; पर, अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए बनाई है। इस दुनियाँ को बनाने वाले को, दुनियाँ की जरूरत ही नहीं है। उसे इससे सुख नहीं लेना। उसे दूसरे पक्षी से भी कुछ लेना-देना नहीं है।

माँ-बाप प्राय: अपने बच्चों से कहते हैं कि उन्हें क्या करना है ? उनकी तो चार दिन की जिन्दगी है। वे तो जो कुछ कर रहे हैं, बच्चों के लिए ही कर रहे हैं। वे अपने बच्चों के लिए ही पैसा इकट्ठा कर रहे हैं। उनके लिए मकान बनवा रहे हैं। बच्चों को सुखी बनाने के लिए जीवन में बुराई तक करते हैं। यदि कोई उनसे पूछे कि वे चोरी क्यों करते हैं, तो वे यही उत्तर देते हैं कि बच्चों के लिए करते हैं। वाल्मीकि से भी पूछा गया था कि वे पाप क्यों करते हैं ? उनका उत्तर था कि घरवालों का पालन करने के लिए

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

करते हैं। उनसे पूछा गया कि क्या इस पाप में उनके घरवाले भागी बनेंगे? वाल्मीकि के पूछने पर घरवालों ने उत्तर दिया कि उनका पालन-पोषण करना उसका कर्तव्य है। यदि वह पाप करता है, तो वही उसे भोगेगा। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि माँ-बाप अपने बच्चों के लिए कुछ-न-कुछ करते ही हैं।

परमात्मा भी अपने बच्चों के लिए बहुत-कुछ करता है। वह उनका शरीर बनाता है। उनके खाने के लिए अनाज, फल और नाना प्रकार की चीजें बनाता है। बच्चों को सुखी देखकर बाप भी सुखी होता है। आदमी सुखी रहें, इसलिए, भगवान ने संसार में अनेक चीजें बनाई हैं। पर, भगवान ने अपने सुख के लिए क्या बनाया? कुछ नहीं। फिर भी, भगवान की बनाई हुई इस दुनियाँ में, हम चैन से नहीं रह पाते।

हम असमर्थ लोग हैं। हम अपने बच्चों को सुखी नहीं कर सकते। हम लोग अपने चेलों को सुखी नहीं कर सकते। सरकार भी असमर्थ है; वह प्रजा को सुखी नहीं कर सकती। पर, सच तो यह है कि भगवान भी असमर्थ हैं; क्योंकि, वे जीवों को सुखी नहीं रख पाये। भले ही उसने अपने लिए कुछ नहीं बनाया; लेकिन, क्या वे, उनके द्वारा बनाए गए जीवों को, संसार में सुखी कर सके?

भगवान ने तुम्हें जन्म दिया था, तो तुम्हें सुखी रखना उनका कर्तव्य था। यदि, वे तुम्हें सुखी नहीं करना चाहते, तो वे निर्दयी हैं। यदि, वे समर्थ हैं, तो निर्दयी ही होंगे; इसलिए, सुखी नहीं करना चाहते। यदि, वे सुखी करना चाहते हैं, दयालु हैं; तो असमर्थ होंगे। यदि समर्थ हैं; तो सुखी क्यों नहीं करते? या फिर यह कहो कि जब तक हम राजी न हों, तबतक भगवान भी हमें सुखी नहीं कर सकते।

भगवान ने तुमको गुलाम नहीं बनाया। भगवान ने तुमको आजाद कर दिया है। तुम चाहे किसी औरत को अपनी मानो,

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

चाहे किसी आदमी को अपना मानो। किसी जानवर को अपना मान लो। मिट्टी की दीवार खड़ी करके, उसे अपनी मान लो। अपनी मानने का हक तुम्हें दे दिया है। लेकिन, उनने एक नियम भी बना दिया है। भगवान ने ऐसा इन्तजाम किया है कि कोई गद्दारी नहीं कर सकता। ऐसी गुंजाइश भी नहीं छोड़ी कि नियम का पालन न किया जाने पर, किसी को पकड़ा जाए और किसी को न पकड़ा जाए। भगवान ने ऐसी व्यवस्था कर दी है कि तुम अपने-आप मान लो कि तुम्हारा है। अब इस ममता का कल क्या होगा ? जब कोई मरे, तब अपने-आप रोना।

तारा ने, बाली को अपना पति माना था। बाली को भगवान् राम ने मार दिया। पति के मरने पर तारा रो रही थी। उसके रोने का कारण क्या था ? उसका पति मारा गया था। तारा को यह दुःख था कि उसका पति मारा गया। यह दुःख राम ने नहीं दिया था। यह दुःख पति के मरने से नहीं हुआ था। यदि पति के मरने से दुःख हुआ होता, तो ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद भी दुःख रहता। वह नासमझी से दुखी हो रही थी। उसकी नासमझी क्या थी ? उसकी नासमझी बाली को अपना पति मानने की थी। जब उसकी नासमझी हट गई; तो दुःख भी चला गया।

तुम 'मैं' और 'मेरे' में बँधे हुए हो। गोस्वामी जी कहते हैं,—

'मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया।'

तुम मेरे-तेरे में बँधकर ही दुखी हो। तुम इसी कारण से चिन्तित हो। तुम राग और द्वेष में झुलस रहे हो; शोक और मोह में फँसे हो। इससे, तुम्हें भगवान भी नहीं छुड़ा सकते। भगवान का ज्ञान जरूर छुड़ा सकता है। सन्त नहीं छुड़ा सकते। सन्तों का उपदेश छुड़ा सकता है। यदि राम छुड़ा सकते होते, तो वे तारा को उपदेश न देते। बिना उपदेश दिए ही उसे दुःख से छुड़ा देते। पति को जिलाने की बात वहाँ नहीं कही गई। यदि चमत्कार का प्रश्न होता,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तो पति को जिला दिया जाता और तारा का दु:ख चला जाता।

पति को जिलाकर, औरत को सुखी करने में औरत को समझदार होने की कोई जरूरत नहीं है। मरे लड़के को जिलादो, माता-पिता खुश हो जाएँगे। लेकिन, लड़का मर जाए और माता-पिता दुखी न हों; इसके लिए समझ की जरूरत है। राम, सिद्धि का प्रयोग नहीं करते। वे तारा को समझाते ही हैं।

तुम शरीर की आवश्यकता की पूर्ति कब तक करोगे? एक दिन यह शरीर छोड़ना ही पड़ेगा और तब सब छूट जाएगा। फिर तुम सुखी कैसे रहोगे? अध्यात्मवाद तुम्हें ऐसे सुख का रास्ता बताता है, जहाँ सब कुछ छूट जाए, फिर भी, तुम्हारा सुख तुम्हारे साथ ही रहे। तुम्हें न तो सिद्धों की जरूरत है और न ईश्वर की कृपा की ही जरूरत है।

ईश्वर की कृपा भी प्राय: अविवेकी पुरुष ही चाहते हैं। यदि, तुम ईश्वर की कृपा का विरोध नहीं करना चाहते, तो तुम्हें ईश्वर की दो कृपाओं की आवश्यकता है। एक कृपा वह, जो तुम्हारा कल्याण करे। दूसरी कृपा यह कि तुम्हें औरत मिले, लड़का मिले और वे मर जाएँ, तो फिर जी जाएँ। मन्त्र पढ़ने से लोग जी जाते हैं। भगवान से प्रार्थना करने पर भी, मरते हुए लोग बच जाते हैं। लेकिन, ये प्रार्थना से बचने वाले, ये ईश्वर की कृपा से बचने वाले लोग, कितने दिन बचे रहेंगे? इस शरीर को तुम कब तक बचा लोगे? आज नहीं तो कल, तुम्हें समझदार होना ही पड़ेगा। चाहे लाख सिद्धों का सहारा लो; चाहे लाख ईश्वर को मना लो; अन्त में तो घुटने टेकने ही पड़ेंगे। ईश्वर भी तुमको नहीं बचाएगा। यदि, कोई बचाएगा, तो केवल ज्ञान ही बचाएगा। विवेक और समझ ही तुम्हें बचा सकती है। ईश्वर ने कितनों को बचा दिया है?

ईश्वर उपासना के पीछे भी मूढ़ता ही है। हम इसलिए ईश्वर के भक्त नहीं हैं कि वह हमारे मन की करेगा। हम तो ईश्वर की

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कृपा इसलिए मानते हैं कि उसने विकास करके हमें आदमी बना दिया। उसने हमें समझने की शक्ति दी। यदि, उसने हमें समझने की शक्ति न दी होती; यदि, उसने हमको ऐसे विवेक के अवसर न दिए होते; यदि, उसने हमें महान् सन्तों से न मिलाया होता; यदि, उसने हमें सत्संग की रुचि न दी होती; तो हम भी कहीं भटक रहे होते। इसलिए, उनकी इन कृपाओं के लिए हम भी उनके चरणों में नमस्कार करते हैं। हम ईश्वर के भक्त इसलिए हैं कि हम समझ की ओर बढ़ रहे हैं।

उसने हमारे मन का घर दे दिया, आश्रम दे दिया, पैसा दे दिया, लड़का दे दिया, इससे क्या होता है ? अच्छे दे देगा, तो बाद में रोएँगे और बुरे दे देगा, तो पहले रोएँगे। बुरे दे देगा, तो उनके रहते रोएँगे और अच्छे देगा, तो बाद में रोएँगे। यदि घरवाली अच्छी होगी, तो उसके मरने पर रोओगे। यदि घरवाला अच्छा हुआ, तो उसके मरने पर रोओगी। यदि, बदमाश या शराबी मिल गया, तो जीते-जी रोओगी। रोना तो भाग्य में लिखा ही है। संसार में आसक्त आदमी को कभी चैन नहीं मिलता। इसलिए, मैं यह कहता हूँ कि भगवान् ने जो कुछ दिया है, यदि उसके साथ भगवान् न मिले; भगवान् के दिए के साथ, यदि भगवान् न मिले; भगवान् की सब कृपा हो और भगवान् के पहचानने की कृपा न हो; तो भगवान् की कृपा भी व्यर्थ हो जाएगी।

भगवान् ने आदमी का तन दिया है, बड़ी कृपा की है। लेकिन, यदि सत्संग न मिले, तो सब व्यर्थ है। मैं कहता हूँ कि भगवान् किसी को आदमी न बनाए और यदि आदमी बनाता है, तो सत्संग मिलना ही चाहिए। बिना सत्संग के पशु ही सुखी रह सकते हैं; क्योंकि, उससे ज्यादा उन्हें बिगड़ना नहीं है। आदमी को यदि ज्ञान नहीं मिलेगा, तो चोर बनेगा, बदमाश बनेगा, गुण्डा बनेगा। स्वयं परेशान होगा और औरों को भी परेशान करेगा। शराब

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पीने लगेगा, तो घरवाली को परेशान करेगा। सब दुःख आदमी ही पैदा करता है। इसलिए, भगवान् दुनियाँ में आदमी न बनाए। यदि, आदमी बनाए, तो किसी सन्त महापुरुष से जरूर मिलवा दे।

पशुओं में उग्रवादी नहीं हैं। कुछ पशु हिंसक होते हैं; लेकिन, उनकी हिंसा की भी सीमा होती है। पशु, प्रायः अपनी क्षुधा शान्त करने के लिए हिंसा करते हैं। विशेष परिस्थितियों को छोड़कर, वे अकारण हिंसा नहीं करते। लेकिन, आदमी की हिंसा की तो कोई सीमा ही नहीं है। दुर्भाग्य यह है कि ये लोग धार्मिक कहे जाते हैं। वाह रे धर्म ! लोग कहते हैं कि धर्म से आदमी सुधरता है। लेकिन, आदमी इतना शैतान है कि धर्म की आड़ लेकर भी वह हिंसा करता है। ईश्वर की आड़ लेकर भी वह हिंसा करता है।

आदमी का सुधारना बड़ा जरूरी है। आदमी नहीं सुधरेगा, तो जीवन नरक हो जाएगा। आदमी को सुधारने के लिए परमात्मा की भक्ति आवश्यक है। विवेक के लिए परमात्मा की भक्ति और सत्संग चाहिए। यह इसलिए नहीं कि सांसारिक कामनाओं की पूर्ति हो जाए। भगवान् मनुष्य की कामनाओं की पूर्ति कहाँ तक करेगा ? मनुष्य की कामनाओं का कोई अन्त नहीं है। यदि, आदमी विवेकी न हो और उसे वरदान से कोई शक्ति मिल जाए, तो उसके हाथों में वह शक्ति खतरनाक ही होगी। जैसे किसी बदमाश को रिवाल्वर मिल जाए; बूढ़े आदमी को शक्ति मिल जाए; अविवेकी आदमी को जवानी मिल जाए और नासमझ आदमी को देह मिल जाए; तो फिर उपद्रव ही देखने को मिलेंगे।

हुआ भी ऐसा ही है। आदमी की समझ ठीक नहीं हुई और उसे देह मिल गई। उसने अपनी समझ को चोरी में लगाया, बदमाशी में लगाया, मारने में लगाया और दुराचार में लगाया। यदि समझदार न होता, तो इतना चालाक व्यभिचारी नहीं हो सकता था। यदि वह बुद्धिमान न होता, तो इतनी चालाकी से हत्या

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

नहीं कर सकता था। वह इतना चालाक डकैत न होता; इतना चालाक राजनेता न होता; इतना ठग गुरू न होता। यह सब बुद्धि के दुरुपयोग ही के कारण तो है। यदि, बुद्धि सात्विक न हो और बुद्धि अच्छी न बनाई जाए; तो आदमी बुद्धि के बल पर ही तो सारे कुकर्म करेगा।

हमने सुना है कि शैतान भी धर्म ग्रन्थों के हवाले देता है। वह कहता है कि यह लिखा है गीता में; यह लिखा है रामायण में; यह लिखा है पुराण में; यह लिखा है गुरुवाणी में। वह भी गुरुओं की वाणी के हवाले देता है; वेदवाणी के हवाले देता है। जिन्हें बदमाशी करनी है, हत्या करनी है, वे कहते हैं,—

'न हन्यते हन्यमाने शरीरे।'

शरीर के मारे जाने से आत्मा नहीं मरती। हत्यारा कितना ब्रह्मज्ञानी है? ये ब्रह्मज्ञानी भी ब्रह्मज्ञान का दुरुपयोग करते हैं। जबकि ब्रह्मज्ञान है—मोक्ष के लिए; लेकिन, ब्रह्मज्ञान का उपयोग लड़वाने के लिए किया जा रहा है। और,—

'त्यागहि इन्द्रिय भोगहि इन्द्रिय, मो को लगे न रंचक रेख।'

यह देखो! यह वेदान्त है। इसी वचन से आदमी मुक्ति प्राप्त करता है और इसी वचन से आदमी दुराचारी बनता है।

अनधिकारी इन्हीं वचनों के हवाले देकर बदमाश बन रहे हैं और अधिकारी इन्हीं वचनों को सुनकर मुक्त हो रहे हैं। वचन वे ही हैं। इसलिए, यह मत समझना कि वेदान्त से सब तर जाएँगे। वेदान्त से बिगड़ भी सकते हैं। उन्हीं शास्त्रों का हवाला देकर, दुनियाँ के लोग बुराई के रास्ते पकड़ते हैं। इसलिए, सोचने का ढँग जब तक अच्छा नहीं होगा; जब तक सात्त्विक श्रद्धा नहीं होगी; कल्याण की इच्छा नहीं होगी; तब तक इन शास्त्रों से भी कोई लाभ नहीं होगा। रावण ने भी शास्त्र पढ़े थे। वह सब जानता था। पर, जानते हुए भी जिधर झुकाव हो जाए, उधर ही की

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दलीलें दी जाती हैं। जरा-सा झुकाव बदल जाए, तो तुम उसी हक में दलीलें देने लगोगे।

इस कुम्भ के अवसर पर, आप अपने दिल के अन्दर पहली शर्त यह रखो कि आप अपने कल्याण के लिए वेदान्त सुनते हैं। आप अपने भले के लिए उपनिषद् और वेदान्त सुनते हैं। आप अपने कल्याण के लिए आए हैं; इन वचनों का दुरुपयोग करने के लिए नहीं। शास्त्र वचनों का इस्तेमाल, दूसरों को ठगने के लिए नहीं करना है; दूसरों को धोखा देने के लिए नहीं करना है। शास्त्र कहते हैं कि तुम कर्त्ता नहीं हो। यह भी इसलिए कि तुम्हारे अन्दर कर्त्तापन की जो ग्रन्थि, जो कॉम्लेक्स, जो दुःख पैदा होता है; वह पैदा न हो। अकर्त्ता होकर, बदमाशी करने के लिए छूट नहीं दी गई है।

'मो को लगे न रंचक रेख।'

सब कुछ करते हुए भी हम अकर्त्ता हैं।

बात सच है यह। यह बिल्कुल झूठ नहीं है। लेकिन, यह भी बिल्कुल झूठ नहीं है कि ज्यातर लोग, जो अकर्त्तापन की बात सुनते हैं, वह इसलिए कि उन्हें पाप करने होते हैं। कुछ बदमाश ऐसे होते हैं, जो बुरे काम करते तो हैं; लेकिन, उनके दिमाग में यह रहता है कि बुरे काम करने से पाप लगता है। वे बुरे काम करना छोड़ते भी नहीं हैं और इधर पाप की भावना भी मन में रहती है। उन्हें लगता है कि कहीं नरक न चले जाएँ। उनने चोरी की है, हत्या की है, बुराई की है; यह पाप है।

वे खुलके तो यह नहीं कहते; पर, वे कभी-कभी बाबाओं के पास आकर पूछते हैं कि स्वामीजी ! कर्म ईश्वर करवाता है कि जीव करता है ? यदि, ईश्वर करवाता है; तो जीव को पाप क्यों लगेगा ? जब कोई कह देता है कि जब तक यह कर्त्तापन का अभिमान है; ज्ञान नहीं है; तब तक तो किए हुए का फल भोगना

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS (USA)

ही पड़ेगा। जब यह ज्ञान हो जाएगा कि तुम कर्त्ता नहीं हो, तो फिर पाप नहीं लगेगा।

उन्होंने सोचा कि वे कर्त्ता हैं, इस अभिमान से ही पाप लगता है और उन्हें उसका फल भोगना पड़ेगा। मैं नहीं करता, ऐसा मानने भर से काम बन जाता है; तो वह कहता है कि मैं यही मान लेता हूँ कि मैं नहीं करता। मैं यही मान लेता हूँ कि मैं कुछ नहीं करता; क्योंकि, इससे पाप नहीं लगेगा। करना तो वही है, उसे तो छोड़ना नहीं है। असल में, मैं अकर्त्ता हूँ; मैं कर्त्ता नहीं हूँ; ऐसा अनुभव जाग्रत हुए बिना ही, वह पाप से बचने के लिए कि उसे पाप न लगे, पाप का फल न भोगना पड़े; बिना जाने ही अपने को अकर्त्ता मान लेता है।

वह अपने को अकर्त्ता मानकर मनमानी करता है। वास्तव में तो उसे अकर्त्तापन का अपरोक्ष अनुभव हुआ ही नहीं है। भगवान कृष्ण कहते हैं,—

'नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥'

जानने के बाद, बेईमानी हो ही नहीं सकती। भगवान कहते हैं कि जो व्यक्ति गुणों को कर्त्ता जानता है; अपने को कर्त्ता नहीं जानता; अपने को दृष्टा जानता है; वह मेरे भाव को, ब्रह्मभाव को प्राप्त कर लेता है। यह दृष्टा यह देखता है कि गुणों के अलावा कोई देखने वाला नहीं है, गुणों से परे जानकर वह मेरे भाव को पहुँच जाता है। वह ब्रह्मभाव को, मुक्तभाव को, परमात्मभाव को, अकर्त्ता-भाव को प्राप्त कर लेता है और उसको भी कर्मबन्धन नहीं होता।

तुम यह जानते हो कि तुम जन्मे हो। जब तक यह जानोगे कि तुम जन्मे हो, तब तक तुम जन्मे ही हो। जब तुम यह जानोगे कि तुम जन्मे नहीं हो, तभी तुम अजन्मा हो सकोगे। कई लोग, यह बिना ही जाने कि वे अजन्मा हैं, रटते रहते हैं कि वे अजन्मा हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हम जन्मते नहीं हैं, यह तुम्हें पता चलना चाहिए। मैं जन्मता नहीं हूँ, यह रटने से कुछ नहीं होगा। मैं जन्मता-मरता नहीं हूँ, इससे लोगों को अमरत्व का लाभ हो गया क्या? मेरा जन्म-मरण नहीं होता, यह मुझे मालूम पड़ना चाहिए। मैं कर्त्ता नहीं हूँ, यह मुझे मालूम पड़ना चाहिए।

यह मुझे मालूम पड़ना चाहिए कि मैं नहीं करता। पर, मुझे तो मनसे लगता है कि मैं कर्त्ता हूँ। मुझे तो लगता है कि मैं कर्त्ता हूँ और अन्य लोगों को कहता हूँ कि मैं अकर्त्ता हूँ। मैं अकर्त्ता हूँ, यह लोगों को नहीं कहना है। तुमको अकर्त्ता होने का स्वयं अनुभव करना है। ध्यान लगाओ, समाधि लगाओ, तो भी एक विचार को सत्य कर दो। विचार को सत्य करने का मतलब यह है कि पहले मोटी-मोटी बातें सुनो। स्वप्न में जब तुम यह देखते हो कि तुम फलाँ-फलाँ जगह चले गये हो, फलाँ जगह खड़े हो; तो तुम्हें यह सच लगता है कि झूठ? सच लगता है। सच क्यों लगता है? क्योंकि, तुम्हारा विचार वैसा ही हो गया है। जैसे, जब तद्रूप हो जाते हो, तब झूठ विचार भी झूठ नहीं लगता; तो यदि तद्रूपता आ जाए; तो सच विचार फिर सच क्यों नहीं लगेगा?

आप ध्यान करते-करते, दृश्य का और वृत्ति का बाध करते-करते, अपने शुद्ध साक्षी निर्गुण स्वरूप का चिन्तन करते-करते देखेंगे कि वृत्तियाँ काम करती हैं, इन्द्रियाँ काम करती हैं। क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ सब होती हैं; किन्तु, आप इन क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को मात्र जानते हैं, प्रकाशित करते हैं। सचमुच ही, तुम्हारा इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा तुम्हें लगना चाहिए, दिखना चाहिए और मालूम भी पड़ना चाहिए। दिखने का मतलब यह है कि मालूम पड़ना चाहिए। जब ध्यान में ऐसा मालूम पड़े, तब समझो कि तुम्हारी समाधि लग गई।

समाधि और प्रकार की भी हैं; लेकिन, मैं इस समाधि पर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ज्यादा जोर देता हूँ। तुम्हें प्रतीति होते-होते समाधि लगे; पता चलता रहे और समाधि लगे। भगवान् कृष्ण ने गीता में इसी समाधि को शान्तिदायी, मुक्तिदायी और आनन्ददायी बताया है।

भगवान् कृष्ण कहते हैं,—

'रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥'

ध्यान के लिए एक सूत्र याद रखो। जब ध्यान में बैठो, तब तुम कुछ मत करो। तुम सिर्फ इतना ही ध्यान करो कि जो कुछ होता है, उसके तुम साक्षी हो; उसको तुम प्रकाशित करते हो। यह जो कुछ हो रहा है, तुम्हारे स्वभाव से प्रकाशित हो रहा है। तुम्हें पता चल रहा है। तुम इनके क्या हो? तुम इनके साक्षी हो। तुम्हारे बिना इनकी प्रतीति नहीं होती है। इसलिए, तुम इनके साक्षी हो। तुमसे उनकी प्रतीति होती है। पर, प्रतीति होने से, तुम जिम्मेवार नहीं हो। तुम यहाँ बैठे हो। कोई आदमी यहाँ से जा रहा है और तुमने उसे देखा; तो तुम जिम्मेवार हो क्या? देखना मेरा स्वभाव है। तुम यहाँ सूर्य के प्रकाश में बैठो हो। यदि, यहाँ तुम जुआ खेलो, तो सूर्य की क्या जिम्मेदारी है? जिम्मेदारी खेलने वाले की है। तुम अभी ज्यादा तर्क में न पड़ो और न ज्यादा नैतिकता में पड़ो।

दो बातें ध्यान में रखो। एक तो यह कि तुम मेरा अध्यात्म बुराई करने के लिए मत सुनना। इसके लिए सबसे पहले कसम खा लो। वेदान्त सुनकर, उसके अनुसार कभी आचरण मत करना। यह सुनकर कि पाप नहीं लगता; कभी पाप नहीं करना है। वेदान्त समझने में देर नहीं लगती; लेकिन, इस वचन का व्यवहारिक अर्थ मत करना। यह पारमार्थिक वचन है; कल्याणकारी वचन है। यह व्यवहार या आचरण में लाने का वचन नहीं है। इसलिए, पहली प्रतिज्ञा तुम्हारे अन्तःकरण में यह होनी चाहिए कि यदि गुरुदेव तुमको ज्ञान देंगे; तो तुम इन वचनों का व्यावहारिक रूप में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दुरुपयोग नहीं करोगे।

दूसरी प्रतिज्ञा यह करो कि तुम अपनी बुद्धि से जो मानते आ रहे हो, उसे छोड़कर, जैसा उपदेश में सुनोगे, वैसा निश्चय करोगे और वैसा ही अनुभव करोगे। यदि, ऐसा अभी नहीं होगा, तो कुछ दिनों में हो जाएगा। भगवान् कृष्ण ने कहा है,—

'रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।'

इन्दियाँ छः हैं; पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और एक मन। इन छः को इन्द्रियाँ कहते हैं। तुम मन द्वारा कान से सुनते हो। मन द्वारा ही त्वचा से गर्मी-सर्दी मालूम पड़ती है। उसको मत रोको। शरीर में कोई हरकत होती है, श्वास चलती मालूम होती है, उसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियों की जरूरत नहीं होती। खाली मन ही श्वास को आता-जाता जानता है। तुम उसे जानने दो। न मन को श्वास जानने से रोको, न मन को शब्द सुनने से रोको। न मन को रूप देखने से रोको, न मन को शून्य देखने से रोको। मन और इन्द्रियाँ जिस विषय में जाएँ, जाने दो।

'गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।'

'प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्।'

इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय में बर्तती हैं। कान शब्द सुनते हैं; आँखें रूप देखती हैं और त्वचा स्पर्श अनुभव करती है। इन्द्रियाँ अपने-अपने काम करती हैं। इन्द्रियाँ भगवान् ने बनाई हैं? भगवान् सत्य संकल्प हैं। वे जो संकल्प करते हैं, वैसा ही बना देते हैं। उन्होंने संकल्प किया। आँखें देखने के लिए बनाईं; इसलिए, आँखों से दिखेगा। कान सुनने के लिए बनाए; इसलिए, कानों से सुनाई देगा। जगत प्रतीति के लिए बनाया; इसलिए, जगत की प्रतीति होगी। मन जगने-सोने वाला बनाया; इसलिए, मन जगेगा भी और सोएगा भी।

यह तो प्रकृति से, परमात्मा के दिव्य विधान से ही ऐसा बना

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है; इसलिए, इसके होने को तुम रोक नहीं सकते। जैसे थोड़ी देर को तुम मन को नींद में रोकते हो, ऐसे ही योगाभ्यास से भी रोक लो, तब भी कोई हानि नहीं होगी। पर, उससे लाभ भी कोई खास नहीं है। नींद में इन्द्रियों का कार्यकलाप रोज ही रुक जाता है। दिखना रुक जाता है, सुनना रुक जाता है, मन का और जगत का भान होना भी रुक जाता है। बिना योग और समाधि लगाए, जगत की प्रतीति रुक जाती है। पर, चूँकि उसमें तुम्हारा कर्त्तापन नहीं है; इसलिए, तुम उसका लाभ नहीं मानते हो।

मनुष्य का मन कैसा है ? जो उसे सहज ही रोज प्राप्त है, उसे वह लाभ नहीं मानता। रोज समाधि लगती है; लेकिन, उसको समाधि महसूस नहीं करता। जब वह बैठेगा, समाधि लगाएगा, तब समाधि महसूस कर पाएगा।

मैं तुम्हें एक बात कहता हूँ,—

'रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।'

अन्तःकरण में राग और द्वेष न हो। भगवान कृष्ण ने इस बात को बहुत जगह दोहराया है। एक जगह कहते हैं कि राग और द्वेष, मन और इन्द्रियों को अधिष्ठान बनाकर, घर बनाकर रहते हैं। जब चेतन, इन पदार्थों को देखता है, तो इन्हें प्रकाशता है। चेतन, पदार्थों को प्रकाशता है। शब्द को, रूप को, रस को और गन्ध को चेतन केवल प्रकाशता है। वह कर्त्ता और भोक्ता नहीं है। लेकिन, चेतन जब पदार्थ को प्रकाशता है, तो बुद्धि द्वारा, मन द्वारा, इन्द्रियों द्वारा प्रकाशता है। आप मुझे देख रहे हैं। केवल चेतन ही देख रहा है कि वहाँ मन भी है। पर, तुम्हारा मन और तुम्हारी आँखें जब मुझे देखें, तो तुम्हारे मन में न श्रद्धा हो और न अश्रद्धा हो; न राग हो, न द्वेष हो। चेतन; मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा विषय को प्रकाशे; लेकिन, राग-द्वेष न हो।

अब चेतन में क्या गड़बड़ है ? इसका मतलब है कि गीता यह

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कहती है कि जब यह जीव पदार्थों तक जाता है; जब जीव पदार्थों तक पहुँचता है; तो इसके साथ तीन चीजें होती हैं—मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ। इनके साथ कौन बैठा रहता है ? राग और द्वेष इनके साथ ही रहते हैं—

'तौ यस्य परिपन्थिनौ।'

ये ही ठग हैं। रेल में, रास्ते में या टिकट लेते समय जेबकतरे जेब काट लेते हैं। हमारे यहाँ कल एक सन्त आए हैं। वे रास्ते में अपना विस्तरा गँवा आए हैं। एक व्यक्ति साधू के ही वेश में था। वह बोला कि लाओ 'मैं आपका विस्तर रख देता हूँ।' वह बिस्तर लेकर चला ही गया। तुम्हारी भी जेब कटी-कटाई रखी है। तुम भी लुटे-लुटाए बैठे हो।

हम यह कह रहे हैं कि अन्तःकरण जब-जब कुछ देखता है; चेतन या चिदाभास जब पदार्थों को प्रकाशता है; तब साथ में बुद्धि भी होती है; मन भी होता है और इन्द्रियाँ भी होती हैं। चेतन, प्रकाशते समय साक्षी की तरह नहीं प्रकाशता; बल्कि, कर्त्ता, भोक्ता अच्छा या बुरा महसूस करता है। बस, इस कारण ही वह फँस जाता है। यदि वह प्रकाशे, तो किसी भी विषय में राग-द्वेष न करे।

ध्यान के समय एक मन्त्र याद कर लो कि तुम अपनी बुद्धि में राग-द्वेष की अनुभूति ही नहीं होने दोगे। इस अनुभूति को काट दोगे। क्योंकि, ध्यान में बैठे तो हो; लेकिन इन जेबकतरों को, इन लुटेरों को मारना बड़ा कठिन है। वहाँ पुलिस नहीं रहती है। आपको बहुत ही सावधान रहना है। ये राग और द्वेष तुम्हारे मित्र बनकर रहते हैं। राग और द्वेष पहले तुम्हारे मित्र बनते हैं। वे तुम्हारी सीट के पास ही बैठ जाते हैं। वे तुम्हें चाय पिलाकर, पानी पिलाकर, पहले पटा लेते हैं; फिर तुम्हारी जेब काटते हैं।

ये राग और द्वेष तुम्हारे भीतर इसी मन से प्रवेश करते हैं। जब तुम अच्छा-अच्छा देखते हो, तो राग मिल गया। इसी तरह

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

से लोभ, काम और द्वेष मिल जाते हैं। मन तुम्हें राग-द्वेष से मिला देता है। तुम राग-द्वेष को केवल जानते ही नहीं हो; तुम उनके केवल साक्षी ही नहीं हो; तुम उनके केवल प्रकाशक ही नहीं हो; जरूर कुछ और भी हो। तुम उनके केवल प्रकाशक बनो। तुम उनके केवल प्रकाशक बनो; न कर्ता बनो न भोक्ता बनो। तुम न राग रखो और न द्वेष रखो।

मैं गीता में जिस श्लोक को देखता हूँ, तो लगता है कि वह श्लोक ही मुक्त कर सकता है। दूसरे श्लोक की जरूरत ही नहीं है। ऐसा ही यह श्लोक है—

'रागद्वेषवियक्तैस्तु विषयानिन्द्रयैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।'

जब अन्तःकरण में राग-द्वेष नहीं होता और इन्द्रियाँ अपने विषयों को चरती हैं; जैसेकि कान आवाज का, आँखें रूप का, त्वचा स्पर्श के द्वारा शीतोष्ण का, नाक सुगन्ध और दुर्गन्ध का, रसना मीठे, खट्टे और चरपरे स्वाद का रसास्वादन करती है; तब बुद्धि उन्हें केवल प्रकाशती है। शब्द, रस और गन्ध का केवल ज्ञान होता है। बुद्धि उसमें अच्छा-बुरा, राग-द्वेष फुरने नहीं देती। जो बुद्धि में सावधान है; बुद्धि से साक्षी है; बुद्धि के स्तर पर राग-द्वेष नहीं होने देता और सब विषयों को आने देता है या सब विषयों में इन्द्रियों को जाने देता है; वह मुक्त बना रहता है।

दो श्लोक हैं। एक में इन्द्रियाँ विषयों को चरती हैं, तब भी कोई गड़बड़ नहीं है; क्योंकि, राग-द्वेष नहीं है। अन्तःकरण वस में है, अर्थात् विवेक और साक्षी भाव में स्थित है। वह मुक्त बना रहता है। वह शान्ति प्राप्त करता है। **'प्रसादमधि गच्छति।"** प्रसन्नता ही प्रसन्नता है, समाधि ही समाधि है।

दूसरा श्लोक इसका ठीक उलटा है। इसमें इन्द्रियाँ नहीं जातीं; इन्द्रियों में ही विषय आते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।'

जैसे नदियाँ सागर में जाती हैं। सागर कोई भी इच्छा नहीं करता। अपनी जगह अचल है। वह नदियों को लेने नहीं जाता। वह परमपद में है। वह अपने स्थान से सरकता भी नहीं है। वह बुलाता भी नहीं है और मना भी नहीं करता। न आने को रोकता है और न बुलाता है। वह अपने-आप में स्थित है। कोई आए न आए; उसे राग-द्वेष नहीं है। उसे कोई कामना नहीं है। नदियाँ सागर को दिन-रात भरती हैं; लेकिन सागर न बढ़ता है, न घटता है। अब ऐसे ही जो है,—

'स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।'

यह न हो, यह हो। यह कामना नहीं आनी चाहिए, यह कामना आनी चाहिए। किसी विषय को रखना और किसी विषय का विरोध करना, यह सब क्या है? काम-कामी को शान्ति नहीं मिलती। पर वह काम-कामी नहीं है। वह आत्मकामी है, आत्माराम है, साक्षी है।

शान्ति उसको मिलती है, जिसकी कोई कामना नहीं है। जिसकी ध्यान में भी कोई कामना नहीं है। जो ध्यान में ऐसी कामनाएँ लेकर बैठते हैं कि उजेला दिखना चाहिए, गुरूजी के दर्शन होने चाहिए, मेरा मन कहीं जाना नहीं चाहिए; उनका तो पहला ही कदम गलत हो गया। तुम जिन्दगी भर शिकायत करोगे कि मन नहीं मानता। अरे! मन तो हमारा भी नहीं मानता; तुम्हारा क्या मानेगा? फर्क इतना ही है कि हम अपने मन को कहीं जाने से नहीं रोकते। पर, हम मन को इतनी सावधानी से देखते हैं कि मन जहाँ गया है, उससे राग तो नहीं करता, उससे द्वेष तो नहीं करता? मन किसी चीज की धारणा तो नहीं बनाता? वह सबको केवल प्रकाशता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

जब मेरी चेतना पदार्थों की प्रकाशक होती है और मेरी बुद्धि में राग-द्वेष नहीं होता; तब मुझे शान्ति मिलती है। तब मैं आत्माराम होता हूँ या तभी मैं बन्धन से छूट जाता हूँ।

हम यह प्रयोग समाधि के लिए, ध्यान के लिए करते हैं। हम कर्त्ता नहीं हैं; हम भोक्ता नहीं हैं। हमें किसी से राग-द्वेष नहीं है; हमें किसी से कुछ भी लेना-देना नहीं है। यह हम कल्याण के लिए करते हैं। हम, ध्यान के समय के लिए यह सूत्र दे रहे हैं,—

'त्यागें इन्द्रिय, भोगें इन्द्रिय, मो को लगे न रंचक रेख।'

यह ध्यान के लिए है। तुम तन को स्थिर कर लो। तन को कहीं जाने न दो और मन को कहीं भी जाने दो; लेकिन, सावधान रहो। तन को बुराई में न जाने दो और मन को पूरी छूट दे दो। सावधान इतने रहो कि राग-द्वेष न होने पाए। आपका ध्यान हो गया।

जो चीज साधना थी, वह आज दुराचार का साधन बन गई है। जो प्रक्रिया, जो समझ, जो ज्ञान, हमें बुद्धि देने के लिए था, संयम देने के लिए था, विवेकपूर्ण बोलने के लिए था; उसका उपयोग लोगों को बेवकूफ बनाने के लिए, लोगों को धोखा देने के लिए किया जाता है। इसलिए, कलयुग में वेदान्त समझाते समय भी सावधान रहना चाहिए। कौन कह सकता है कि ईसा का कहना गलत है, कौन कह सकता है कि शंकराचार्यजी ने गलत कहा है; कौन कह सकता है कि वेद गलत कहते हैं ?

वेदान्त के बिना कोई तर नहीं सकता। परन्तु, देखना यह है कि सुनने वाला श्रोता किस नीयत से सुनता है। यदि उसकी नीयत खराब है, तो हर चीज खराब है। इसलिए,—

'न सूरत बुरी है, न सीरत बुरी है।
बुरा है वही, जिसकी नीयत बुरी है।।'

वेदान्त क्या करेगा, जब तुम्हारी नीयत ही खराब है ? जब तुम्हारी नीयत ही अच्छी नहीं है, तो तुम्हें वेदान्त क्या तारेगा ? वेदान्त से

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तो तुम और बरबाद हो जाओगे। वेदान्त को पक्षपात से कोई न सुने। वेदान्त के उपदेशों पर ईमानदारी से कोई आचरण करके देखे।

लाखों लोगों को वेदान्त ने बिगाड़ा भी है। जो वेदान्त नहीं जानते, वे पाप-पुण्य मानते हैं। वे किसी हद तक ठीक हैं। पर जो थोड़ा ज्यादा जान गए हैं, वे तो पापियों से भी आगे बढ़े जा रहे हैं। इसलिए, सावधानी से इस बात को देखो कि वेदान्त द्वारा मनमानी करने के लिए ही तो वेदान्त सुनने नहीं आए हो? यदि तुम अपने कल्याण के लिए सुनने आए हो, तो मैं यह कहता हूँ कि जब तुम ध्यान में बैठो, तो अपनी चेतना को सजग रखो। तुम अपनी बुद्धि को विवेकवती बनाओ। जब-जब तुम्हारी वृत्तियाँ कहीं जाएँ, मन कहीं जाए, तब इतना ही जानते रहो कि उनसे तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है। विषयों से भी तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है; क्योंकि, विषयों से प्रयोजन होता है, तो ही इन्द्रियाँ जोर पकड़ती हैं।

यह अच्छा है, यह बुरा है; यह मेरे मन का है, यह मेरे मन का नहीं है; यही राग है। इसी से गड़बड़ होती है। उसका प्रभाव फिर मन और बुद्धि पर पड़ता है। इसलिए, बुद्धि द्वारा विवेकवान और वैराग्यवान रहकर, अपने बोध को जानो; अपने प्रकाश को जानो। प्रकाश का मतलब है कि शब्द को प्रकाशो; क्योंकि, तुम चेतन हो। क्या सूर्य अपनी किरणों को इसलिए रोक लेता है कि सामने नाबदान है और इसलिए ज्यादा फैलाता है कि सामने गंगा है? क्या सूर्य अपनी किरणों को कमल की तरफ ज्यादा फैलाता है और चमेली, गुलाब या बेला की तरफ से समेट लेता है? सूर्य अपनी किरणों को बिना किसी भेदभाव के समान रूप से फैलाता है। किसी के खिलने या मुरझाने से सूर्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

जब ध्यान में बैठो तो तुम भीतर से साक्षी हो जाओ। तुम सबको प्रकाशो। अपने ज्ञान को दबाओ मत। अपने ज्ञान को समेटो मत; बल्कि, ज्ञान को बिखरने दो। ज्ञान को खूब फैलने दो। पर,

 Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

ज्ञान ज्ञान ही रहे। ज्ञान लिप्त न हो। वह चिपके नहीं, पकड़े नहीं, हटाए नहीं, ज्ञान ज्ञान ही रहे। इस प्रकार से बैठो, समाधि हो गई। समाधि लगने में देर लगती है क्या ?

अब, आप लोग ध्यान में इसी प्रक्रिया से बैठिए। पैर बदल लीजिए। आराम से बैठिए। किसी तरह का कोई बन्धन नहीं है। न आसन का बन्धन है और न पैर का बन्धन है। आपसे एक ही अपेक्षा है कि आप अपने मन को किसी एक स्थान पर टिका दें। आप चाहें तो थोड़ी देर के लिए आँखें खुली रख सकते हैं। दो-चार मिनट तक आँखें खुली ही रखें। आँखें खुली बनी रहें और मन को मस्तक पर, श्वास पर या नाम पर लगाओ। अभी राग-द्वेष कुछ न हो। आँखें खुली रखे रहो और मन का ख्याल करो।

आँखें बन्द करने में कभी-कभी मन और आँखों का भेद स्पष्ट नहीं होता। किन्तु, आँखें खुली रहने में मन क्या है और आँखें क्या हैं, इसका भेद स्पष्ट हो जाता है। दृष्टि क्या है और मनोवृत्ति क्या है, यह स्पष्ट हो जाता है। आँखें खुली रहने से दृष्टि आँखों के सामने या आँखों के पास रहेगी या बाहर रहेगी ? 'अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टि।' बाहर तो तुम्हारी दृष्टि हो और लक्ष्य तुम्हारा भीतर हो। आँख तुम्हारी बाहर को है। दृष्टि तुम्हारी बाहर है। यह सब सहज ही है। आपको कुछ देखना नहीं है। दृष्टि बाहर है और लक्ष्य भीतर है।

लक्ष्य में भगवन्नाम भी हो सकता है। लक्ष्य में साक्षी होना भी हो सकता है। लक्ष्य में मन को जानना भी हो सकता है। मन को स्थिर करो। मन के साक्षी बनो या मन से राम-नाम का स्मरण करो। मन से श्वास स्मरण करो या मन से शरीर के भीतर टिक जाओ। आज्ञा-चक्र पर टिक जाओ या आँख के पीछे टिक जाओ या श्वास पर टिक जाओ। नाम सुमिरन करने लग जाओ। जो दिल करे, करो। मन जहाँ जाता है, जाने दो। मन को जानते रहो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और आँखें खुली रहें।

तुम चेतन हो। तुम्हीं आँख से देख रहे हो। तुम्हीं कान से सुन रहे हो। तुम्हीं श्वास को जान रहे हो। तुम्हीं मन के लगने न लगने को जानते हो। इसलिए, मन के कहीं चले जाने में भी द्वेष न करो कि मन क्यों चला गया? यह भी तो द्वेष है कि मन क्यों चला गया? यह भी इच्छा मत करो। पदार्थों से तो राग-द्वेष करना ही नहीं है; पर मनोवृत्ति से भी राग-द्वेष मत करो। आपकी चित्तवृत्ति यदि कहीं गई, तो यह मत सोचो कि क्यों गई? यह रुकती क्यों नहीं? यह भी कामना हो गई। कामनारहित हो जाओ। कामना-रहित जाग्रति हो।

बुद्धि में, मन के भीतर किसी तरह की इच्छा ही नहीं होनी चाहिए। मन टिकता क्यों नहीं? यह भी इच्छा हो गई। केवल साक्षी, केवल चेतन रहो। केवल जाग्रत हूँ और इच्छारहित, चुनाव-रहित हूँ। कोई भी चुनाव नहीं करना है। किसी तरह की धारणा ही मत बनाओ। धारणारहित हो जाओ। कोई निर्णय मत करो कि ऐसा हो और ऐसा न हो। बल्कि, जो हो रहा है, उसके साक्षी रहो। जो हो रहा है, उसके साक्षी और जो है, उसके साक्षी रहो। बुरा और अच्छा, ये दो शब्द अपनी बुद्धि से ही निकाल दो।

दस मिनट तक आपके ख्याल में, विचार में या आपकी बुद्धि में ही न आए कि कुछ अच्छा है या कुछ बुरा है। बुरा कुछ भी नहीं है। यदि, बुरा कुछ नहीं है, तो अच्छे और बुरे का भेद ही मिट गया। फिर अच्छा ही अच्छा है। यदि कुछ है, तो अच्छा ही अच्छा है।

अच्छा और बुरा कहना गलत है; क्योंकि, यह द्वैत है, यह द्वन्द है। बुरा और अच्छा नहीं है; बस, सब कुछ एक जैसा ही है। मन यहाँ रुका, तो वैसे ही और कहीं गया, तो वैसे ही। सुन रहे हो, तो वैसे ही; देख रहे हो, तो वैसे ही। सोच रहे हो, तो वैसे ही; विचार कर रहे हो, तो वैसे ही। कल्पना कर रहे हो, तो वैसे ही;

 Digitization by American Academy of Indic Studies (AAIS)(USA)

नहीं कर रहे हो, तो वैसे ही। मन के जाने से, मन के रुकने से, तुम अपने-आप में फर्क न मानो। तुम वैसे ही चैतन्य हो। मन रुका है, तो तुम चेतन हो; मन गया, तो तुम चेतन हो। सुनाई दे, तो चेतन हो; नहीं सुनाई दे, तो चेतन हो।

जब कान में आवाज आती है, तो सुनाई देती है। तब तुम क्या हो? तुम तब भी चेतन, साक्षी और प्रकाशक ही हो। तुम यह मानो ही मत कि गड़बड़ हो गई है। कान में आवाज क्यों आती है? आवाज खूब आने दीजिए। बल्कि, ध्यान को कान में ही जोड़ दीजिए। आवाज आने दीजिए और जिस सेकण्ड आवाज न आए, तो न आने दीजिए। जब आवाज नहीं आती, तब क्या आप चेतन नहीं हैं? तब क्या आप साक्षी नहीं हैं।

तुम न आवाज आने पर खुशी मनाओ और न उसके बन्द होने पर। यह मत मानो कि आवाज आई ही क्यों? यह भी न सोचो कि अब आवाज क्यों नहीं आती? आवाज आए, चाहे न आए; कुछ होए, चाहे न होए; तुम हो। तुम साक्षी हो। तुम प्रकाशक हो। किसी भी प्रकाशित विषय के साथ न तो आसक्ति हो और न विरक्ति हो; न राग हो और न द्वेष हो। अच्छा और बुरा कुछ नहीं है।

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि जब राग और द्वेष बुद्धि से निकल जाते हैं; तो देखते हुए, सुनते हुए, करते हुए भी तुमको पता चलेगा।

'नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।'

तुम तत्त्ववेत्ता, आत्मवेत्ता, स्वरूपवेत्ता हो। तुम्हें मालूम पड़ता है कि इन्द्रियाँ अपना काम कर रही हैं; मन अपना काम कर रहा है।

मैं असंग हूँ; मैं साक्षी हूँ; मैं चेतन हूँ; इसके लिए कुछ भी तो नहीं करना है। इतना ही तो करना पड़ता है कि न राग है, न द्वेष है। कान में आवाज आती है; शरीर में कुछ होता है; मन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कहीं जाता है; इनसे न राग है और न द्वेष है। न अच्छा, न बुरा, न लेना, न देना। केवल साक्षी, केवल प्रकाशक, केवल दृष्टा और केवल चैतन्य।

जो कुछ है, उस सब कुछ को मैं जानता हूँ। पर, मेरा किसी से राग नहीं है, किसी से द्वेष नहीं है। अर्थात् बुद्धि में न वह बुरा लगे और न अच्छा लगे। पदार्थ क्या अच्छे, क्या बुरे? दृश्य क्या अच्छे क्या बुरे? क्रियाएँ क्या अच्छीं, क्या बुरीं? मैं साक्षी हूँ। मैं दृष्टा हूँ। मैं प्रकाशक हूँ।

मुझे कोई इच्छा नहीं है। तुम्हें कोई इच्छा न हो। मन में इच्छा हो, तो हो। मन की इच्छा को अपनी इच्छा न मानना। वह तो इच्छा करेगा ही। पैर थकेगा, तो बदलना ही पड़ेगा। अभी नहीं, तो थोड़ी देर बाद बदलना पड़ेगा। सब कुछ करते हुए पैर बदलो, श्वास लो, सुनो और देखो। मना ही मत करो; खूब सुनो और देखो। मन से भगवान् का नाम बोलो। शरीर से पैर बदलो और हाथ बदलो। क्रिया करो; लेकिन, तुम भीतर चैतन्य रहो। तुम जानते हो; केवल जानते हो। तुम करते नहीं हो। हाथ बदलना पड़ा, यह तो जरूरी था। इससे मेरा क्या सम्बन्ध? मैं साक्षी हूँ, मैं दृष्टा हूँ। मैं आराम में, विश्राम में, शान्ति में चैतन्य हूँ। अब, भगवान् कृष्ण का उपरोक्त मन्त्र, पूरी तरह तुम्हारी समझ में आ गया होगा।

भगवान् कृष्ण ने गीता में मन्त्र ही मन्त्र सुनाए हैं। गुरु-मन्त्र एक भी नहीं सुनाया है। राग-द्वेष रहित इन्द्रियाँ विषय में जाती हैं, तो प्रसन्नता ही रहती है; ग्लानि नहीं होती। भगवान् ने कहा है कि नदियाँ सागर में मिलती हैं। सागर कुछ भी इच्छा नहीं करता। ऐसे ही, जो कामनारहित हैं, सारे विषय उनके भीतर आते रहते हैं; पर उनकी शान्ति भंग नहीं होती; बल्कि, उन्हें शान्ति प्राप्त होती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भगवान् कृष्ण ने कहा है कि जिस समय इन्द्रियाँ अपना काम करती हैं, उस समय तत्त्ववेत्ता यह देखता है कि 'मैं साक्षी हूँ।' इन्द्रियाँ अपना-अपना काम कर रही हैं। कान सुनता है; मुझे पता है। मन चला जाता है; मुझे पता है। शरीर में कुछ होता है; मुझे पता है। परन्तु, मुझे सबका मात्र ज्ञान है। न मैं उनमें शामिल हूँ; न उनका कर्त्ता हूँ और न ही मेरी जिम्मेदारी है। मैं तो केवल प्रकाशक हूँ। यदि, इतने ही विचार का उदय हो जाए कि 'मैं साक्षी हूँ, मैं चैतन्य हूँ, मैं निर्विकल्प हूँ, मैं असंग हूँ, मैं अदृश्य हूँ, मैं निराकार हूँ, मैं ध्यानस्वरूप हूँ; इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं', तो आपको इसी समय शान्ति प्राप्त हो सकती है। यदि, भगवान् कृष्ण के वचनों से इस बुद्धि का, इस विचार का, इस ख्याल का उदय हो जाए; तो आप अभी-अभी शान्ति, समाधि, मुक्ति, अभय और निश्चिन्तता प्राप्त कर सकते हैं।

मेरा किसी से द्वेष नहीं, संघर्ष नहीं, युद्ध नहीं, विरोध नहीं और निरोध भी नहीं है; केवल स्वबोध है। इन्द्रियों और वृत्तियों का न तो निरोध करो और न ही विरोध करो; केवल स्वबोध में, साक्षीपन में, चैतन्यपन में रहो। चंचलता-स्थिरता का क्या करोगे? ये तो सब द्वन्द हैं। अच्छा-बुरा और लाभ-हानि द्वन्द हैं; तुम तो निर्द्वन्द हो। तुम नित्य सत्वस्थ हो, नित्य शान्त हो और नित्य मुक्त हो।

तुम अपने को नहीं, विषयों को देखते रहते हो। तुम्हें अपना ख्याल नहीं है। तुम मन के साथ चिपक के राग-द्वेष करते हो। तुम राग-द्वेष छोड़ दो। जो कुछ होता है, उसके तुम मात्र साक्षी हो। तुम असंग, चैतन्य और प्रकाशक हो। इस बात की याद, तुम्हारे कल्याण के लिए है; घर में लड़ने के लिए नहीं है। यह कहकर मन-मानी करने के लिए नहीं है कि 'मेरी इन्द्रियाँ कुछ भी करें, मुझे कुछ फर्क नहीं पड़ता'। वह केवल ध्यान, स्मरण और मुक्ति के लिए है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ये उपदेश मुमुक्षु के लिए हैं; बेईमानों को सुनाने के लिए नहीं हैं। ये उपदेश केवल उनके लिए हैं, जो कर्म और उपासना करके ज्ञान के अधिकारी हैं। ये उपदेश उनके लिए हैं, जो संसार के भोगों से उपराम होकर, मोक्ष चाहते हैं; जो दुनियाँ के बन्धनों में झुलस रहे हैं और केवल शान्ति चाहते हैं। ये उपदेश चोर, उचक्के, बदमाश और गुण्डों के लिए नहीं हैं। इसलिए, अधिकारी लोग ही इन्हें सुनेंगे और अपने जीवन में कृतकृत्य होंगे।

तुम्हारे मन में संकल्प है; लेकिन, तुम निःसंकल्प हो। तुम्हारे कानों में आवाज आती है; तुम उसके केवल प्रकाशक हो। तुम्हारी आँखों में रूप है; तुम उसके केवल दृष्टा हो। तुम्हें शरीर की अनुभूति हो रही है; तुम केवल अनुभवी हो। तुम्हारी श्वास चलती है; तुम उसके केवल साक्षी हो। तुम्हारा मन कहीं जाता है, तुम उसके साक्षी हो। तुम चैतन्य हो। तुममें कोई विकार नहीं है। तुम अविकारी हो। विकार जड़ है, तुम चैतन्य हो। सब दृश्य हैं; तुम अदृश्य दृष्टा हो। सब कुछ कल्पित है; तुम अधिष्ठान साक्षी हो। यही जानो, यही मानो और इसे ही स्वीकार करो। इसी से तुम्हारा भला होगा और मुक्ति मिलेगी। □

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ज्ञान कहे अज्ञान बिनु

भगवान् की माया को ऐसा ही समझो, जैसे कि भगवान् की व्याख्या है। जैसे राज्य से राजा होता है, इसी तरह माया से ब्रह्म है। राजा और प्रजा, शिष्य और गुरु, पति और पत्नी अकेले नहीं होते। अकेली कोई पत्नी नहीं होती; अकेले कोई पति नहीं होता। पति-पत्नी दोनों होते हैं। पत्नी से ही कोई व्यक्ति पति कहलाता है और पति से ही कोई स्त्री पत्नी कहलाती है। ऐसे ही जीव-जगदीश और माया-ब्रह्म हैं।

मानस में गोस्वामीजी की एक चौपाई है,—

'माया-ब्रह्म जीव-जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा।'

जहाँ रंक है, वहाँ अवनीश यानी राजा है। जहाँ जीव है, वहाँ जगदीश है, जहाँ माया है, वहाँ ब्रह्म है। माया नहीं होती, तो ब्रह्म कैसे होता; जीव नहीं होता, तो जगदीश कैसे होता? जीव और जगदीश का जोड़ा है। माया और ब्रह्म का जोड़ा है। माया अविवेकियों के लिए तो गड़बड़ करती है; वैसे, माया ही तो ब्रह्म को व्यक्त करती है। जैसे रंक ही के कारण राजा है; पत्नी के कारण ही कोई पति है; ऐसे ही माया के कारण ही ब्रह्म है।

गोस्वामीजी कहते हैं—

'ज्ञान कहे अज्ञान बिनु, तम बिनु कहे प्रकाश।
निर्गुण कहे सगुण बिनु, सो गुरु तुलसीदास॥'

तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति, जो अज्ञान के बिना ज्ञान की, अन्धकार के बिना प्रकाश की और सगुण के बिना निर्गुण की

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

व्याख्या कर दे, मेरा गुरू है। वे उसे गुरू मानने को तैयार हैं। वैसे गोस्वामीजी सारी जगह तो नम्र नजर आते हैं; लेकिन, यहाँ पर उन्होंने चुनौती ही दे दी है।

कभी-कभी जब हम लोग भी बोलते हैं, तो ऐसा लगता है जैसे कि हम लोगों को बड़ा अहंकार हो गया है। मैं कहता हूँ कि वह अहंकार नहीं है। वह विषय अपने-आप में इतना सच्चा होता है कि उसके कहने वाले की छाती हिम्मतवाली हो जाती है। जिस बात में सच्चाई हो, उसमें दम आ जाती है। आदमी में दम नहीं होती; दम सच्चाई की है। तुमने चोरी नहीं की, तो तुम निडर होकर बोलोगे? और यदि की है और कहोगे कि तुमने नहीं की है, तो उसमें दम नहीं होगी; क्योंकि, तुम झूठ बोल रहे हो। जब सन्त सच बोलते हैं, तो अहंकार मालूम पड़ता है।

गोस्वामीजी, सारी रामायण में अपनी विनम्रता ही व्यक्त करते हैं। वे अपने को भगवान् का दास कहते हैं। निम्न चौपाई में वे अपने अज्ञान को व्यक्त कर रहे हैं—

'कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउं लिखि कागद कोरें।'

पर, कहीं-कहीं जरा जोर लगा दिया है। वे कहते हैं कि जो कोई माई का लाल, अज्ञान के बिना ज्ञान, अन्धकार के बिना प्रकाश और सगुण के बिना निर्गुण सिद्ध कर दे, उसे वे अपना गुरू मानने को तैयार हैं।

गोस्वामीजी चेला बनने के लिए चुनौती देते हैं। वे ऐसे व्यक्ति का चेला बनने के लिए तैयार हैं, जो सगुण के बिना निर्गुण, माया के बिना ब्रह्म, अज्ञान के बिना ज्ञान, मृत्यु के ख्याल के बिना अमृत, असत् के बिना सत् सिद्ध कर दे। देह के बिना साक्षी की अनुभूति नहीं की जा सकती। वृत्ति के बिना साक्षी का अनुभव नहीं किया जा सकता। वृत्ति, साक्षी का अनुभव नहीं करती; वृत्तियों में ही तो साक्षी स्पष्ट होता है। ब्रह्म, परमात्मा को ढाँकता नहीं है।

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

माया परमात्मा को छिपाती नहीं है; वल्कि, माया से ही ब्रह्म प्रकट होता है। माया में ब्रह्म प्रकट है।

रामचरितमानस के निम्न दोहे पर विचार कीजिए,—

'पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म॥'

जिस तालाब में कमल होते हैं, वहाँ कमल के पत्ते-ही-पत्ते नजर आते हैं; पानी कहीं भी नजर नहीं आता। 'पुरइन' कमल को कहते हैं। 'पुरइनि सघन ओट जल' खूब गहरा जल भरा है; लेकिन, पत्तों की ओट में है। 'बेगि न पाइअ मर्म' जल्दी समझ में नहीं आता! 'मायाछन्न न देखिऐ, जैसें निर्गुन ब्रह्म'। इसी तरह से माया से आच्छन्न ब्रह्म नजर नहीं आता। पुरइन के द्वारा पानी का अनुमान लगाया जा सकता है। जिनको इस नियम का पता होता है, वे पुरइन को देखकर, वहाँ पानी पीने भी पहुँच सकते हैं।

इसी प्रकार से,—

'धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।'

धुएँ से अग्नि ढँक जाती है। बहुत धुआँ हो, तो अग्नि नजर नहीं आती। लेकिन, देखो एक गणित और भी है—

'अयं पर्वतो वह्निमान् धूमत्वात्।'

यह पर्वत आग वाला है। यह कैसे जाना? धूमत्वात्। धुआँ होने के कारण जाना। जो धुआँ आग को छिपाता है, वह धुआँ ही यह प्रगट करता है कि वहाँ अग्नि है।

किसानों की जब कभी होले खाने की इच्छा होती है, तो उनके पास आग न होने पर वे यह देखते हैं कि किस खेत के पास धुआँ उठ रहा है। उन्हें आग नहीं दिखती है। क्या दिखता है? धुआँ दिखता है। वे आग लेने वहाँ चले जाते हैं। यहाँ पर धुआँ आग ढाँकता है कि आग प्रकट करता है? धुआँ आग प्रगट करता है। धुआँ आग को ढाँकता भी है, उसे देखने नहीं देता और धुआँ आग बतलाता भी है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

माया से ब्रह्म ढँका भी है और माया से ब्रह्म प्रकट भी है। वृत्तियों से, विचारों से, साक्षी ढँका है और जानकार हो, तो विचारों में ही तो साक्षी प्रकट है। जहाँ विचार नहीं है, क्या वहाँ साक्षी प्रकट है ? क्या पदार्थों और दीवालों में साक्षी प्रकट है। साक्षी तो वहीं स्पष्ट है, जहाँ बुद्धि है। इसलिए,—

'सर्वधीः साक्षीभूतम् ।'

साक्षी सर्व बुद्धियों का है। बुद्धियों का ही साक्षी होता है। जहाँ बुद्धि होती है, वहीं साक्षी, साक्षी लगता है। बाकी साक्षी होता तो है; पर, लगता नहीं है। पत्नी होती है, तो आदमी पति लगता है। आदमी पति कब होता है ? जब पत्नी नहीं होती तब ? बिना पत्नी का कोई भी पति होता है ? फिर वह क्या होता है ? आदमी तो होता है; पर, पति नहीं होता।

साक्षी, साक्षी नहीं होता। वह ब्रह्म तो होता है; वह चैतन्य तो होता है; वह निर्विकल्प तो होता है; पर, साक्षी नहीं होता। साक्षी तब ही होता है, जब कोई विचार, कोई बुद्धि, कोई वृत्ति या अन्तःकरण होता है। कोई-न-कोई सूक्ष्म चीज होती है; वही साक्षी कहलाती है। इसलिए, स्वप्नों का साक्षी होता है। स्वप्न हुआ था; तभी तो उसका साक्षी था। जाग्रत है; तभी तो उसका साक्षी है। कोई-न-कोई वृत्ति होती है, जैसे ज्ञान, अज्ञान, निरुद्ध, शान्त या विकल्प और उसका साक्षी होता है। कोई-न-कोई वृत्ति है और उसका साक्षी है।

इसे हम उदाहरण से समझने का प्रयत्न करेंगे। मिट्टी किसी-न-किसी रूप में रहती है। चाहे ढेले के रूप में हो, चाहे घड़े के रूप में हो, चाहे ईंट के रूप में हो, चाहे दीवाल के रूप में हो; चाहे चबूतरे के रूप में हो और चाहे पृथ्वी के रूप में हो। आप मिट्टी का, किसी-न-किसी आकार में ही दर्शन करते हैं। फर्क क्या है ? आकार में मिट्टी का दर्शन करो और आकार का बाध कर दो।

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

आकार न रहेगा; लेकिन, मिट्टी रहेगी।

मिट्टी घड़े के आकार में है। मान लो कि घड़े का आकार नहीं रहा। ऐसी स्थिति में मिट्टी कैसे रहेगी ? क्या निराकार रहेगी ? जब घड़ा नहीं रहा, तब मिट्टी का कोई आकार नहीं रहा। मान लो यह दीवार है। यहाँ मिट्टी दीवार के आकार की है। दीवार गिरा दी, तो ढेले हो गये, ईंटें हो गईं। तब भी मिट्टी उस आकार में है। एक अणु के आकार में है। मिट्टी का तो कोई आकार नहीं है; पर, मिट्टी निराकार कभी नहीं मिलती।

लोग निराकार के दोहरे अर्थ करते हैं। एक यह कि जिसका कोई आकार न हो। दूसरा अर्थ यह कि जिससे सब आकार निकलते हों। जिससे आकार बनते हों, जिसमें आकार रहते हों और जिसमें आकार लीन हो जाते हों। यदि मिट्टी का एक आकार मिटा दोगे, तो दूसरा आकार होगा ? क्या वह आकार नहीं होगा ? जैसे मान लो कि सोने के गहने का रूप तोड़ दिया; तो फिर सोना निराकार हो गया क्या ? मान लो नथनी तोड़ दी; तो अब सोना निराकार होगा कि उसमें भी कोई आकार होगा ? सोने का कोई-न-कोई आकार तो रहेगा ही।

अब सोने का जो आकार बचा है, उसको भी तोड़ दो। सोने के बचे हुए आकार को तोड़ देने पर भी, सोने का कोई-न-कोई आकार तो बचता ही है। जब सोने का कोई स्थायी आकार नहीं है; कोई सच्चा आकार नहीं है, तो चाहे जिस आकार को मिटा दो। क्योंकि, कोई भी आकार टिकने वाला नहीं है। लेकिन, सोने के जितने भी आकार तुम मिटाओगे, वह फिर कोई-न-कोई आकार धारण कर लेगा।

जिसने सब आकार धारण कर लिए हैं, क्या वह निराकार है ? क्या उसका अपना कोई निजी आकार नहीं है ? अच्छा यह बताओ कि सोने का निजी आकार कौन-सा है, जो वह हमेशा रखता है ?

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वह कोई आकार थोड़े ही है। वह तो सोने का सोनापन है, जो हमेशा रहता है। चाहे जिस आकार को, सोना अपना आकार बनाकर रख सकता है। जैसे मान लो कि मेरा एक असली रूप है। थोड़ी देर के लिए मैं कुछ बन जाऊँ, मैं काजल पोत लूँ या दाढ़ी कटा दूँ। दाढ़ी रखा लूँ या झाँगे की जगह कुछ और पहन लूँ, तो वे मेरे नकली रूप होंगे। मेरे नकली रूप के पीछे, मेरा एक असली रूप तो है ही, जो मेरे नकली रूप के पीछे भी बना ही रहता है। जब मैं अपने सब नकली रूप उतार दूँगा, तब मेरा एक असली रूप तो रहेगा ही।

सोने का असली रूप कौन-सा है ? क्या सोना लम्बा, चौड़ा, चपटा, गोल या पतला होता है ? कोई नहीं ? जब सोना भी अपना निश्चित रूप नहीं रखता, तो उसे भी हम अरूप मान लें, तो क्या हर्ज है ? सोना सब रूप धारण करता है; पर, उसका अपना कोई रूप नहीं है।

ईश्वर का लक्षण भी यही है। जैसे कोई नट अनेक काम करके दिखाता है; पर, नट कुछ नहीं बनता। नट, नट ही बना रहता है। नट का तो कोई रूप होता है। पर, प्रत्येक वस्तु अनेक रूप बनकर दिखाती है और उसका अपना स्वरूप ज्यों का त्यों रहता है। उसका रूप, दिखता नहीं है। क्योंकि, जो दिखता है, वह स्थायी नहीं है।

तुमने सोने का जो रूप देखा, उस रूप को हम मिटा सकते हैं कि नहीं ? जो रूप हम मिटा सकते हैं, वह सोने का असली रूप नहीं है। सोने के तुमने जितने रूप देखे हैं, वे कौन-से रूप देखे हैं ? नकली रूप देखे हैं कि असली रूप देखा है ? असली कैसा होता है ? जब तुम सोने का ही असली रूप नहीं बता सकते, तो भगवान् का असली रूप क्या जानोगे ?

मैं तुम्हें बता दूं कि सोने का जो असली रूप है, वही भगवान्

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

का रूप है। यदि सोने का असली रूप और भगवान् का असली रूप एक ही है, तो बताओ कैसा है ? वह रूप कैसा होता होगा ? जब सोने का कोई आकार न होता होगा, तब सोना कैसा होता होगा ? तुम किसी भी चीज का असली रूप नहीं बता सकते ? क्योंकि, असल में किसी का रूप ही नहीं है। असल में सब ब्रह्म है। अपना कोई असली रूप ही नहीं है। जितने रूप हैं, सब नकली हैं। तुम असल में ब्रह्म हो और ब्रह्म का अपना कोई रूप नहीं है। तो सोना भी ब्रह्म है।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।'

सब ब्रह्म है। इसीलिए, ब्रह्म का अपना कोई रूप नहीं है। तभी तो कहा है,—

'निर्गुण कहे सगुण बिनु।'

सगुण के बिना निर्गुण नहीं कह सकते। रूप के बिना अरूप नहीं जान सकते।

अब एक ही बात है। अन्तःकरण में रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, ये सब भी गुण हैं। लेकिन, ये गुण निर्गुण के बिना नहीं रहते और निर्गुण बिना गुण के नहीं रहता। कहीं सतोगुण होगा, कहीं रजोगुण होगा और कहीं तमोगुण होगा। कोई-न-कोई गुण तो होगा ही। लेकिन, जहाँ गुण होगा, क्या वहाँ साक्षी भी होगा ? जहाँ कोई आकार होगा, वहाँ सोना भी होगा और जहाँ सोना होगा, वहाँ कोई-न-कोई आकार भी होगा। दोनों ही इकट्ठे रहते हैं और दोनों को ही जानना है।

ध्यान में जब बैठो, तब आप दो बातों पर ध्यान दो। एक तो वह रूप, जो होता है और दूसरा वह रूप, जो बदलता है। जो बदलता है, वह गुण है। गुण बदलते हैं; लेकिन, गुण का आश्रय नहीं बदलता। गुण का सहारा या गुण जिसके सहारे रहते हैं; वह नहीं बदलता। गुण बदलते हैं, तो बदल के जो नया गुण होता है,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वह कहाँ रहता होगा ? वह भी आश्रय में ही रहेगा। जैसे सोने का कोई आकार है। जब हम सोने के उस आकार को बदल देंगे; तो नया आकार किसमें रहेगा ? सोने में ही रहेगा। जो भी आकार बदलेंगे, वे सभी सोने के ही सहारे रहेंगे। इसमें पहले वाला आकार देखो। ध्यान रखना ! जिसमें पहले वाला आकार रहा था, उसी में दूसरा आकार रहेगा।

आपने स्वप्न देखा। जिसमें स्वप्न रहा था और जिसे स्वप्न दिखा था; उसी को जगत् भी दिखेगा। उसी में जगत् भी रहेगा कि जगत् किसी और साक्षी में रहता है ? जिस साक्षी में स्वप्न रहता है, उसी साक्षी में जगत् भी रहता है। जिस साक्षी को, जिस साक्षी में, जिस साक्षी से जगत् दिखता है; उसी साक्षी को, उसी साक्षी में, उसी साक्षी से स्वप्न दिखता है। साक्षी दो नहीं हैं।

सोने का, दोनों में से कोई भी आकार सोने के बिना नहीं रहा; सोने में ही रहा। कोई भी आकार, टिकता नहीं है; सोना ही टिकता है। ऐसे ही स्वप्न नहीं टिकता, जाग्रत नहीं टिकता, सुषुप्ति नहीं टिकती। विचार नहीं टिकते, ध्यान नहीं टिकता और कुछ भी नहीं टिकता। पर, जिससे ध्यान उत्पन्न होता है; जिसमें ध्यान रहता है; जिसमें ध्यान बदलता है; वह एक ही है, जो रहता है। सब-कुछ होता है; किन्तु, एक है; जो रहता ही है और वह ही साक्षी है। वह साक्षी कोई और नहीं; वह तुम ही हो।

इस समय हम तुम्हारी ही कथा कर रहे हैं। हम ब्रह्म की तो थोड़ी, पर तुम्हारी कथा ज्यादा करते हैं। जब मैं कहूँ कि 'वह तुम हो', तो यहाँ तुम 'तुम' को साक्षी ही सुनना। जब मैं 'तुम' शब्द कहूँ, तो तुम साक्षी में ही 'तुम' शब्द का इस्तेमाल करना; देह में नहीं करना। क्योंकि, जो बदलता है, वह साक्षी में रहता है; वह साक्षी नहीं है। जो बदल जाता है, वह सोने में था। वह सोने में ही था, जो बदल गया। जो नहीं रहा, वह किसमें था ? और जो

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

अब आ गया, वह किसमें आ गया ? वह सोने में ही आ गया । जो अब रह रहा है, वह सोने में ही है और जो पहले था, वह सोने में ही था । और सोना ? सोना भी था । क्या अब नहीं है सोना ? सोना अब भी है ।

श्री नानकजी ने कहा है,—

आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु ।'

साक्षी भी सच था । था तो स्वप्न भी सच; लेकिन, स्वप्न रहा नहीं । स्वप्न था तो सच; पर, रहा नहीं । लेकिन, साक्षी था भी सच, है भी सच और आगे रहेगा भी सच । वह रहेगा भी सच ? वह साक्षी, जो स्वप्न में सच था और वह, जो अब भी सच है; वह तुम हो या कोई और है ? जिसने स्वप्न देखा; जिसमें स्वप्न रहा; जिसके रहते स्वप्न नहीं रहा; वह रह जाने वाले तुम ही हो या कोई और है ?

गोस्वामीजी ने कहा है,—

'निर्गुण कहे सगुण बिनु ।'

सगुण और निर्गुण सदा रहते हैं । गुण स्वप्न थे और साक्षी था । स्वप्न भी थे और दो थे । अब दो में से स्वप्न नहीं रहा; साक्षी है । अब साक्षी है और जगत् है । अब इस समय साक्षी भी है और जगत् भी है । अब, जब स्वप्न देखेंगे, तब यह जगत् नहीं होगा; पर, साक्षी यही होगा कि दूसरा होगा ? साक्षी यही होगा । देखो ! जब हमने अँगूठी बनाई थी, तब सोना वही था । जब अँगूठी तोड़कर कुछ और बनाया, तब भी सोना वही था, गहना दूसरा था । फिर तीसरा गहना बनाया; सोना वही था । जो वही है, वह ही साक्षी है । जो बदलता नहीं है, वह साक्षी है और जो बदल जाता है, वह स्वप्न है । जो बदल जाता है, वह कल्पित है । जो बदल जाता है, वह उपाधि है । जो बदलती है, वह माया है और जो नहीं बदलता, वह ब्रह्म है ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हमने एक गहना तोड़ा और दूसरा बना दिया। फिर दूसरे को तोड़ा और तीसरा बना दिया। पर, यह बताओ कि पहले गहने को तोड़ा, तब दूसरा बनाया और दूसरे को तोड़ा, तब तीसरा बनाया। हमने अँगूठी बनाई। पर, अँगूठी के रहते कहीं नथनी है कि नहीं? कहीं ऐरन है कि नहीं? कहीं चूड़ी है कि नहीं? कहीं जंजीर है कि नहीं? यह बताओ कि जंजीर तोड़ें, तब इसकी नथनी बनाएँगे? यहाँ ही यदि नथनी तोड़ें, तो यहाँ ऐरन बनाएँगे; ऐरन तोड़ें, तो चूड़ी बनाएँगे। यहीं पर, यदि उसको एक-साथ एक जगह देखो; तो एक जगह, बिना एक को तोड़े, उसे बदल नहीं सकते। किन्तु, यहाँ नथनी, वहाँ अँगूठी, वहाँ जंजीर, वहाँ और कुछ रह सकता है कि नहीं? रह सकता है। लेकिन, एक ही जगह पर, उतने ही सोने से, यदि कोई दूसरी चीज बनानी हो, तो एक को तोड़ना ही पड़ेगा और बाकी जगह, सोने को नहीं तोड़ना पड़ेगा।

अब, जरा साक्षी को समझने का प्रयत्न करें। साक्षी में स्वप्न है। बिना स्वप्न के तोड़े, जाग्रत नहीं बनेगा। जाग्रत को मिटाये बिना, स्वप्न नहीं बनेगा। जाग्रत और स्वप्न को मिटाये बिना, सुषुप्ति नहीं बनेगी। सुषुप्ति को तोड़े बिना, स्वप्न नहीं बनेगा। यहाँ तो तोड़-फोड़कर ही बनता है। लेकिन, मेरे यहाँ सुषुप्ति बनाने के लिए, मेरा जाग्रत तोड़ना पड़ेगा और मैं जागा रहूँ, तो वहाँ सुषुप्ति हो सकती है। मैं सुषुप्त रहूँ, तो वहाँ जाग्रत हो सकता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि, सोने का इतना बड़ा विस्तार है कि उसी सोने का एक प्रदेश में एक गहना, किसी दूसरे प्रदेश में दूसरा गहना और किसी अस्तित्व में तीसरा गहना है। पर, जिसमें जो गहना है, वह तोड़कर ही नया बनाया जाएगा। किन्तु, अलग-अलग जब हम देखते हैं, तो यहाँ यह गहना है, वहाँ वह गहना है और कहीं और तीसरा ही गहना है।

इस बात को एक उदाहरण से समझें। जहाँ तुमने मिट्टी का

Digitization by American Academy of Indic Studies - AAIS (USA)

मकान बनाया है, वहाँ उस मिट्टी के मकान का कुछ और भी बना सकते हो; लेकिन, उसे गिराकर ही बना सकते हो। पर, बाकी धरती पर तो बिना गिराये ही बना सकते हो। वहाँ जब बनाओगे, तो वहाँ का रूप गिराकर ही बनाओगे। यह नहीं है कि जब तुम मकान बनाओगे, तब मटकी नहीं बना सकते। मटकी बनाने के लिए, मकान गिराना जरूरी नहीं है। वहाँ जो आकार है, उसको बदल दो। ढेले को फोड़कर घड़ा बना दो। घड़े को तोड़कर मूर्त्ति बना दो। देखो ! एक जगह, एक आश्रय में, एक समय पर, दो चीजें नहीं रह सकतीं। किन्तु, एक आश्रय में, अन्य जगह पर, अन्य समय पर, कुछ भी हो सकता है।

जिस मिट्टी का तुमने कुछ बनाया है, यदि उसे बदलोगे, तभी उस मिट्टी से कुछ बना पाओगे। बाकी मिट्टी से, इसको तोड़े बिना भी बना सकते हो। इसी तरह से, एक ब्रह्म में सब रहता है; पर, एक साक्षी में, एक समय में, सब कुछ नहीं रहता। ब्रह्म में रहता है। पृथ्वी में यानी मिट्टी में; एक साथ मकान, दुकान, चबूतरा, घड़ा, ईंट, पेड़, पहाड़ सब रहते हैं। एक मिट्टी में ही तो ये सब रहते हैं। किन्तु, स्वल्प मिट्टी में, एक हिस्से में, एक समय में, दो चीजें नहीं रह सकती।

ब्रह्म में तो एक साथ ही सुषुप्ति भी है, जाग्रत भी है, जन्म भी है और मृत्यु भी है। कहीं मौत है, तो कहीं जीवन है। कहीं सो रहा है, तो कहीं जग रहा है। एक ही चैतन्य में कहीं नींद है, कहीं स्वप्न है, कहीं सुषुप्ति है, कहीं जन्म है और कहीं मरण है। यह सब एक ही चैतन्य में है। लेकिन, जो साक्षी में है, वही सोने में है। सब एक साथ है। पर, इस सोने में, इस जगह, एक समय पर, एक ही चीज रहेगी।

यों तो मिट्टी में ही सब रहते हैं। किन्तु, तुमने जिस मिट्टी का खिलौना बनाया है; तुम्हारी मिट्टी में जो खिलौना है; उस खिलौने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

को तोड़े बिना नया खिलौना नहीं बनेगा। इसी तरह से, ब्रह्म में तो एक साथ सब कुछ है; किन्तु, साक्षी में एक साथ सब कुछ नहीं है। जब जाग्रत है, तब और; जब स्वप्न है, तब और; और सुषुप्ति में नहीं है। इसलिए, साक्षी में एक अवस्था ही एक समय पर रह सकती है; दो नहीं। लेकिन, जो यहाँ स्वप्न का और जाग्रत का साक्षी है; जो यहाँ बुद्धि का आश्रय है; वही और जगह है।

इसे फिर गहराई से समझिए। हमारे गहने का आश्रय सोना है; वह सोना ही और जगह के गहने का आश्रय है। आश्रय सोना ही है; लेकिन, यही सोना नहीं। आश्रय तो सोना ही है; परन्तु, 'यही' में जरा भेद हो जाता है। जो मिट्टी मकान का आश्रय है, वही घड़े का भी है; लेकिन, वही मिट्टी नहीं है। एक ही मिट्टी आश्रय है; पर, उतनी ही और वही नहीं। नहीं तो, दो चीजें मिट्टी में बनती ही नहीं। एक ही मिट्टी में मकान और घड़ा, एक ही समय में, बन ही नहीं सकते। इसका मतलब है कि एक ही जगह, एक ही मिट्टी में, घड़ा और मकान नहीं हैं।

साक्षी में, एक ही जगह स्वप्न और जाग्रत की दो अवस्थाएँ नहीं रह सकतीं। लेकिन, एक ही साक्षी में, भिन्न-भिन्न जगहों में, भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ रह सकती हैं। वही साक्षी चूँकि सर्वत्र है; इसलिए, ब्रह्म है। साक्षी क्या है? साक्षी ब्रह्म है। इसलिए, ब्रह्म के नाते, उसी ब्रह्म चेतन में, कहीं जाग्रत है, कहीं स्वप्न है और कहीं सुषुप्ति है। कहीं जन्म है और कहीं मौत है। साक्षी को ब्रह्म जरूर जानना है।

जो सोना अपने को अँगूठी समझता है; जो सोना अपने को नथनी समझता है; यदि उसी सोने की चूड़ी बनानी है, तो अँगूठी या नथनी को तोड़कर ही बनानी होगी। पर, यदि सोना ब्रह्म की तरह अपने को व्यापक जान ले; यदि सोना यह जान ले कि वह उतना ही नहीं है, जितना कि अँगूठी या नथनी में है; तो सारा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सोना ही सोना है। अँगूठी, नथनी और चूड़ी सबका आश्रय सोना ही है।

साक्षी की दृष्टि से, मैं एक समय में सब-कुछ नहीं हूँ; पर, ब्रह्म की दृष्टि से मैं इस समय ही सब-कुछ हूँ। तुम जब साक्षी होते हो, तो कभी स्वप्न के साक्षी होते हो, कभी जगत् के साक्षी होते हो। तुम कभी नींद के साक्षी होते हो, कभी समाधि के साक्षी होते हो। ऐसा क्यों है? क्योंकि, जब समाधि होगी, तभी तो समाधि के साक्षी कहोगे। जितनी देर समाधि नहीं है, उतनी देर समाधि के साक्षी नहीं हो। जितनी देर स्वप्न है, उतनी देर स्वप्न के साक्षी हो। पर, जब स्वप्न नहीं है, तो स्वप्न के अभाव के साक्षी कह सकते हो। स्वप्न के नहीं, स्वप्न के अभाव के साक्षी हो। जाग्रत के साक्षी हो। इसी तरह से, जैसे वहाँ स्वप्न के, जाग्रत के और निद्रा के साक्षी हो; वैसे ही यहाँ पर भी साक्षी है कि नहीं? यहाँ भी साक्षी है। इनके यहाँ भी साक्षी है। इनकी बुद्धि का, इनके मन का, इनकी देह का और इनकी वृत्तियों का साक्षी यहाँ है।

अँगूठी का आधार सोना है, नथनी का आधार सोना है और चूड़ी का आधार भी सोना है; तो सोना ही सब गहनों का आधार है। इसी तरह से, एक मकान का आश्रय, दूसरे का मकान का आश्रय और तीसरे मकान का आश्रय मिट्टी ही है। जब कोई मकान टूटेगा, तो वह कहेगी कि मकान नहीं रहा। लेकिन, मकान यहाँ नहीं रहा; कहीं और तो है। यहाँ ही नहीं रहा है। मिट्टी में यहीं मकान नहीं रहा या कहीं भी मकान नहीं रहे? यहीं मकान नहीं रहा और जगह तो मकान हैं। इसी तरह से, साक्षी में यहाँ स्वप्न नहीं रहा, जाग्रत है; यहाँ जाग्रत नहीं रहा, स्वप्न है। लेकिन, क्या साक्षी में कहीं भी स्वप्न नहीं है? क्या साक्षी में कहीं भी जगत् नहीं है? क्या साक्षी में कहीं भी नींद नहीं है? साक्षी में, कहीं स्वप्न है, कहीं जगत् है और कहीं नींद भी है। कहीं जन्म है, तो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कहीं मौत भी है। लेकिन, सब जगह साक्षी कितने हैं? साक्षी एक ही है,—

'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।'

साक्षी एक है। एक ही देवता है, एक ही ब्रह्म है और वही साक्षी है, जो एक है। जो पृथ्वी, जो मिट्टी एक है; वही घड़े में, वही मकान में, वही दुकान में, वही ईंट में और वही ढेले में है। वही मिट्टी, एक ही मिट्टी, सब में समाई हुई है। लेकिन, ढेले वाली मिट्टी अपने को सीमित करती है कि ढेला उसमें है। अब ढेला नहीं रहा। वह यह बनेगी। वह सीमित होकर सोचती है। अभी भी साक्षी, देह के द्वारा बुद्धि के अभिमान से सोचता है। 'मैं' आदमी हूँ, 'मैं' दुखी हूँ, 'मैं' स्वान में हूँ और 'मैं' जागा हूँ।

सब में, एक साक्षी को एक जानना ही वेदान्त का अपना उद्देश्य है। साक्षी जानने तक तो योग भी साथ ही है। सांख्य भी साक्षी है। सांख्य और योग, हमारी आत्मा के चेतन होने तक, आत्मा के निर्विकार होने तक, आत्मा के जन्म-मरणरहित होने तक, योग भी साक्षी है और सांख्य दर्शन भी साक्षी है। किन्तु, साक्षी सारी दुनियाँ में एक है और दुनियाँ के साक्षी तुम्हीं हो।

अब तुम्हें लगता क्या है? गड़बड़ क्या है? तुम अपने को दुनियाँभर के साक्षी क्यों नहीं मानते? यह बात गहराई की है। इतना समझ जाओ कि तुम्हारा पूरा ज्ञान, तुम्हारा सारा दारोमदार यहाँ इस बात पर है कि पहले तो तुम अपने को साक्षी जानो। कई लोग तो साक्षी ही नहीं समझ पाते। पहली सीढ़ी है कि तुम अपने को वृत्ति, अन्तःकरण, स्वप्न और कल्पना का साक्षी जानो।

साक्षी किसे कहते हैं? जो बदल जाता है? जो कुछ हो जाता है और फिर खो जाता है? जो हमेशा रहता है और कुछ बदल

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जाता है ? मान लेते हैं कि वह बना रहता है, पर बदल-बदलकर रहता है ? जो यह जानता है कि वह बिना बदले रहता है, वह आत्मवेत्ता है। अभी वह ब्रह्मवेत्ता नहीं है। पर, इतने में ही कृत-कृत्यता हो जाती है।

कई लोग तो यहीं आकर कहने लगते हैं कि आहा ! कितना अच्छा लगता है। अभी तो तुम्हें यही स्पष्ट नहीं है कि तुम साक्षी हो। नहीं तो उपनिषद् का वचन 'तत्त्वमसि' अनुभवहीन ऋषियों का बनाया हुआ नहीं है। तत्, त्वम्; तुम वह हो। वह कौन ? तुम कौन ? ये दो बातें क्यों ? 'तत्' और 'त्वम्' दो पद हैं। तत्, वह; त्वम्, तुम। फिर तो दो हो गये, वह और तुम। फिर वह तुम हो। वह जो है, वह तुम हो। तुम ही वहाँ भी हो।

'तत्त्वमसि' माने त्वम् एवं तत्। तुम ही, वह भी हो। जो तुम हो, यह तुम ही वह हो। अच्छा ! चलो वह न जानो। पर, अभी तुम देह हो ? तुम मन हो ? तुम स्वप्न हो ? तुम ख्याल हो ? फिर, तुम क्या हो ? तुम साक्षी हो। पहले तुम साक्षी हो और जो तुम हो, वही तत् है। वही तत् है, वही तुम हो। तुमको हम ब्रह्म कहते हैं; लेकिन, तुमको हम देह नहीं कहते। तुमको हम बुद्धि नहीं कहते। तुमको हम प्रकृति या माया नहीं कहते। पहले हम तुमको साक्षी कहते हैं। जब तुम यह समझ जाओगे, तब तुमको हम ब्रह्म कहेंगे। इसके पहले हम तुमको कभी ब्रह्म नहीं कहेंगे। पहले हम बार-बार तुमको साक्षी कहेंगे। क्यों ? इसलिए कि पहले तुम्हारा देह धर्म टूट जाए। पहले तुम्हारा मनोधर्म टूट जाए, बुद्धि-धर्म टूट जाए; विचार-अहंकार टूट जाए। केवल चिन्मात्रता, साक्षीमात्र, निर्विकल्प, चैतन्य, शान्त, शिव तत्त्व, मैं रूप से पहले स्पष्ट हो जाए। इसको कहते हैं 'त्वम्' पद का शोधन।

'तत्त्वमसि' महावाक्य में तीन शब्द हैं। जिसमें दो पद 'तत्' और 'त्वम्' पद हैं। 'तत्' का अर्थ होता है वह और 'त्वम्' का होता

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है तू। तू में भी मिलावट है और तत् में भी मिलावट है। तत् भी शुद्ध नहीं है और त्वम् भी शुद्ध नहीं है; दोनों ही अशुद्ध हैं। तुममें क्या-क्या मिला है? तुममें देह, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहंकार मिला है। और मुझमें क्या मिला है? उसमें सूर्य, चाँद, धरती और आसमान मिला है। इसमें उसको मिला दें। दोनों को नंगा करना है। दोनों को शुद्ध करना है।

ब्रह्म को भी हम ही शुद्ध करेंगे और अपने को भी हम ही शुद्ध करेंगे। ब्रह्म न तो अपने को शुद्ध करेगा और न हमको ही शुद्ध करेगा। हम ही को दोनों को नंगा करना पड़ेगा। स्वयं को भी नंगा होना है और उसे भी नंगा करना है; तब मिलना है। ब्रह्म बड़ा शर्माता है। वह खुद कभी नंगा नहीं होता। वह पर्दे में रहता है। तुम्हीं निर्लज्ज हो, जो स्वयं भी नंगे होते हो और उसे भी नंगा करते हो।

संसार के भोग के लिए बेशर्मी चाहिए। एक पक्ष बड़ा शर्मीला होता है। चाहता तो है, पर नंगा नहीं होता। शर्माता बहुत है। वह छेड़छाड़ तो करेगा; लेकिन, अपनी तरफ से नंगा नहीं होगा। भगवान् चाहता तो है; किन्तु, अपना पर्दा आप नहीं उठाता। अपने-आप खुद नंगा नहीं होता। अपने-आप कुछ नहीं होता। वह अपनी माया आप नहीं हटाता। अर्जुन को कहता है। अर्जुन से हटवाता है।

ब्रह्म अपना पर्दा, अपने-आप का आवरण, आप नहीं हटाता। वह माया में आवृत्त है। वृहत्, समष्टि, उपाधि से ढँका है और जीव व्यष्टि से ढँका है। 'मैं' साक्षी तो जीवत्व से ढँका है और ब्रह्म, ईश्वरत्व से ढँका है। पर, ईश्वर अपने ईश्वरत्व को त्याग करके, हमसे एकता नहीं करेगा। ईश्वर के ईश्वरत्व को और जीव के जीवत्व को हटाकर, दोनों उपाधियों का बाध करेंगे; ईश्वर नहीं करेगा। ईश्वर की सृष्टि की रचना उपाधि, सृष्टि आदि रचने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

की सामर्थ्य उपाधि जैसे भगवान के जो स्वभाव हैं; उनका बाध करके और अपने में देह, इन्द्रिय और बुद्धि की सीमा का परित्याग करके, साक्षी और ब्रह्म को एक अनुभव करने का अधिकार मुझे है।

वह राजी तो है कि कोई एकता कर ले; लेकिन, वह कुछ करने वाला नहीं है। तुम्हीं करो, जो कुछ करो। वह इसलिए नहीं करता; क्योंकि, उसकी उतनी अटकी नहीं है, जितनी कि हमारी अटकी है। जिसकी अटकी हो, वह करे। भगवान् हटाना तो चाहता है, राजी तो है, वह मना नहीं करता; पर, अपनी तरफ से वह खुद नंगा नहीं होता। उसकी उपाधि का त्याग और अपनी उपाधि का त्याग, दोनों ही उपाधियों का त्याग तुम करो और तुम अपने को ब्रह्म जानो। तुम और ब्रह्म एक हो जाओ। उपाधि छोड़कर तुम एक हो, तो एक हो जाओ; क्योंकि, 'तत्त्वमसि' महावाक्य में तत्, त्वम् और असि का अर्थ है; वह, तू है; वह तुम हो; तुम वह हो; वह और तुम दोनों एक हो।

मकान और घड़ा, दोनों की उपाधि यदि घड़ा छोड़ दे; घड़ा अपनी भी छोड़ दे और मकान की भी छोड़ दे; उसका बड़प्पन और अपना छोटापन छोड़ दे, तो सत एक है। दोनों में कौन है? एक कि दो? दोनों में एक ही अस्तित्व है; लेकिन, दो लगते हैं। यह साहस कौन करेगा? बड़े को नहीं करना है। वड़ा क्यों करेगा? गरीब सोचते हैं कि अमीर अपनी अमीरी को छोड़ दे; गरीब अपनी गरीबी को छोड़ दे और दोनों एकता कर लें। अमीर तो चाहते ही नहीं हैं। अमीरों की अमीरी और गरीबों की गरीवी, गरीब ही छोड़ें। अमीर तो छोड़नेवाले हैं नहीं। इसलिए, उनकी उपाधि को हटवा के और अपनी भी उपाधि का ख्याल छोड़कर कहें कि भाई! गर्मी क्यों दिखाते हो? मेरे में और तुममें फर्क क्या है? कोई फर्क नहीं है।

महर्षि रमण ने, तीस वर्ष तक केवल यही साधना की कि 'मैं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कौन हूँ ?' तुम जब ध्यान में बैठो, तो और काम में मन ही मत लगाओ। भजन मत करो। वैसे वह भी एक विधि है। मैं भी वह बतलाता हूँ। पर, जिस दिन जो बतलाता हूँ, वही पूरी तरह करो। कोई जरूरत नहीं कि तुम भजन करो। कोई जरूरत नहीं कि तुम ध्यान लगाओ। तुम्हें ध्यान लगाना ही नहीं है।

मन की किसी भी वृत्ति को, जो उठे; जानो और उसे प्रकाशो। इतना ही बार-बार निश्चय करते रहो कि यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं नहीं हूँ। एक वृत्ति क्षणभर के लिए मुझमें होती है। फिर दूसरी वृत्ति उठती है और फिर तीसरी वृत्ति उठती है। इस तरह से वृत्तियाँ उठती रहती हैं और मैं बना रहता हूँ। जो होती रहती है और जो रहता है, इन दोनों में फर्क हैं। जो हो-होकर मिटता है, वह कल्पित है और जो बना रहता है, वह सत है। आप सत्य हैं, वृत्तियाँ कल्पित हैं। ये गुण हैं, तुम निर्गुण हो। ये मायिक हैं, तुम ब्रह्म हो। ये जड़ हैं, तुम चैतन्य हो। ये ज्ञात है, तुम ज्ञाता हो; तुम साक्षी हो। ये प्रकाशित हैं, तुम प्रकाशक हो। तुम्हारा इनका क्या तालमेल ? पर हैं इकट्ठे।

गहने का और सोने का स्वरूप नहीं मिलता। यह सीमित है, वह असीम है। यह न रहने वाला है, वह रहने वाला है। यह बदलता रहने वाला है, वह हमेशा रहने वाला है। लेकिन, दोनों ही इकट्ठे रहते हैं। साथ तो रहते हैं। यह हम नहीं कहते कि साथ नहीं रहते। साथ तो रहते हैं; लेकिन, दोनों के लक्षण अलग-अलग हैं। एक का लक्षण और, दूसरे का लक्षण और। तुम अपने लक्षण पहचानो। तुम भागो नहीं, जागो। भागो नहीं, कुछ करो नहीं; केवल, परखो।

तुम्हारा स्वरूप क्या है और वृत्ति का स्वरूप क्या है ? वृत्ति का स्वरूप है, उत्पन्न होकर विलय होना। वृत्ति का स्वरूप है, गतिमान रहना, बदलते रहना। साक्षी का स्वरूप है, एक रहना।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ध्यान में तो साक्षी बदल जाता होगा ? तुम वृत्ति हो कि साक्षी हो ? साक्षी हो, तो शिकायत करोगे कि नहीं ? क्या तुम ध्यान के बाद उठकर शिकायत करोगे कि तुम ध्यान में ठीक नहीं रह सके ? तुम ठीक रहते हो या बदलते रहते हो ? ठीक रहते हो। ध्यान में क्या अनुभव करोगे ? ठीक रहे या बदलते रहे ? यदि यह अनुभव करोगे कि बदलते रहे, तो शिकायत करोगे कि ध्यान नहीं लगा। साक्षी का अनुभव किए बिना ही ध्यान की शिकायत करते हो।

जब तक तुम अपने को साक्षी नहीं जानते, तब तक ध्यान की शिकायत कभी नहीं मिट सकती। लाख तुम रोज ध्यान लगाओ; रोज समाधि लगाओ; लेकिन, साक्षी को तुम जब तक 'मैं' नहीं समझोगे; वृत्तियों को 'मैं' कहते रहोगे; वृत्तियों को 'मैं' महसूस करते रहोगे; तब तक रोज सवेरे भले ही घण्टों मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करो, सफलता नहीं मिलेगी। किसी दिन कहोगे कि आज तो थोड़ी देर बहुत अच्छा ध्यान लगा; पर, पूरे टाइम ध्यान नहीं लगा। बीच-बीच में गड़बड़ होती रही। शिकायत मिटाना है, तो स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करो। साधना न करो। क्योंकि,—

'यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई।'

स्वरूप का अनुभव, कोई भाग्यवान ही, गुरुओं की कृपा से प्राप्त कर पाता है। यह करने-धरने से प्राप्त नहीं होता। करने-धरने से तो वृत्ति ठीक रहेगी। वृत्ति ठीक करके कहोगे कि इतनी देर तो मजा आया, फिर नहीं आया। पहले बहुत आनन्द आता था, अब नहीं आता। ऐसी वृत्ति दिनभर नहीं रहती। तुम नहीं रहते या वृत्ति नहीं रहती ? असल में, यह शिकायत इसलिए है कि तुम अभी अपने को साक्षी न जानकर, वृत्ति को ही 'मैं' मानते हो। वृत्ति को ठीक जानकर कहते हो कि आज तुम ठीक रहे; आज तुम बहुत अच्छे रहे। असल में वृत्ति के साथ तुम्हारा इतना मेल

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हो गया है कि वृत्ति बिगड़ती है, तो तुम अपने को बिगड़ा समझते हो।

जिससे तुम्हारा रिश्ता होता है, यदि उसकी तबियत खराब हो, उसका अपमान हो, वह बीमार हो, तो साथी होने के कारण, तुम पर भी प्रभाव पड़ता है कि नहीं ? तुम पर प्रभाव पड़ता है; लेकिन, साक्षी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अच्छा यह बताओ कि तुम वृत्ति के, बुद्धि के साथी हो या साक्षी हो ? हम साक्षी हैं। उत्तर तो सही देते हो। उत्तर तो तुम्हें रट गये हैं। लेकिन, अभी तो तुम साथी ही हो। यदि वेदान्त की परीक्षा हो, तो तुम्हें पूरे नम्बर मिलेंगे। पर, जीवन की कसौटी में तुम फेल हो। तुम्हारी शिकायत ही यह बतलाती है कि जीवन की कसौटी में तुम फेल हो। तुम शरीर नहीं हो; शरीर तुम्हारा नहीं है। बुद्धि तुम्हारी नहीं है और बुद्धि के धर्म तुम्हारे धर्म नहीं है।

जिस दिन आप अपने अनुभव में यह देखेंगे कि वृत्तियाँ बदलती हैं और 'मैं' ज्यों का त्यों रहता हूँ; उसी दिन तुम्हें साक्षी का अनुभव हो गया। साक्षी का अनुभव होने से ही तर जाओगे। क्या तब साक्षी नहीं था, जब तुमने वेदान्त नहीं सुना था ? साक्षी तो तब भी था। क्या साक्षी आगे नहीं रहेगा ? आगे भी साक्षी रहेगा। लोग वेदान्त सुनाते हैं; लेकिन, अनुभव पर जोर नहीं देते। इसीलिए, लोगों के अन्तःकरण में तृप्ति नहीं आई; सन्तुष्टि नहीं आई। लोगों का अन्तःकरण लाभान्वित नहीं हुआ। जो जानेगा, वह सुखी होगा। इसको केवल सुनके जानना नहीं है; इसका अनुभव करना है,—

'श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।'

सड़क पर सोऽहम् चिल्लाने से मुक्ति नहीं होती। यदि इस तरह मुक्ति प्राप्त होती, तो मैं भी जोर से चिल्लाता। मेरे गुरु-भाइयों को शिकायत है कि मैं चिल्लाता क्यों नहीं हूँ ? कई लोग

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

तो मेरी बड़ी निन्दा करते हैं। वे मुझसे चिढ़ते हैं। तुम्हारे चिढ़ने से वेदान्त का क्या सम्बन्ध ? मैं तुम्हारे चिढ़ने की परवाह करूँ कि सच्चाई कहूँ। तुम लाख साक्षी हो, लेकिन सच्चाई यह है कि बिना बोध के तुम नहीं तरोगे। क्या पशुओं में साक्षी नहीं रहता ? पशुओं में भी साक्षी रहता है; लेकिन, वे मुक्ति के अधिकारी क्यों नहीं हैं ? क्योंकि, वे यह अनुभव करने में समर्थ नहीं हैं। पशुओं का देह 'साधन धाम' नहीं है।

आजकल के वेदान्ती तो किसी भी पशु को कहेंगे कि 'तू भी मुक्त स्वरूप है'। लेकिन, पशु को यदि वेदान्त सुनाओगे, तो क्या वह जान जाएगा कि वह पशु नहीं है; साक्षी है ? क्या पशु यह अनुभव करेगा कि वह दुखी नहीं है। जो अनुभव करे, वही अधिकारी है। जो पशु नहीं समझेंगे, उन्हें मैं क्या सुनाऊँ ? इसलिए, हम उन्हीं इन्सानों को सम्मेलन में बुला रहे हैं, जो पशु नहीं हैं। जो इन्सान समझने की चेष्टा करता है, वह पशु नहीं है। जिसके कान में आवाज जाती है, उसको इन्सान मत समझना। यदि यहाँ कोई पशु होता, तो मेरे शब्द उसके भी कान में जाते; पर, वह समझता नहीं।

हम किसी को यह नहीं कहते कि वह हमारे प्रवचन में न आए। हम सुनाने को तैयार हैं; लेकिन, जो समझने का इरादा नहीं रखता, वह इन्सान हमारी कथा सुनने का हकदार नहीं है। हमारी तरफ से पक्षपात नहीं है। हम किसी भी मुसलमान, ईसाई, सिख या पारसी श्रोता को रोकते तो नहीं कि हमारे प्रवचन में न आओ। हम यह तो नहीं कहते कि जब तक हमें गुरू नहीं बनाओगे, तब तक हम यह रहस्य नहीं बताएँगे। तुम्हें चेला बनाने के बाद ही धर्म के गूढ़ रहस्य बताएँगे। यह उन धूर्तों का सिद्धान्त है, जो चेलों को बाँधकर रखना चाहते हैं। जो लोग बिना चेला बनाए सत्य की कथा नहीं सुनाते, मैं समझता हूँ कि वे चेलों को अपने खूँटे से

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बाँधने का इन्तजाम कर रहे हैं।

वेदान्त, चेला बनाकर सुनाने की विद्या नहीं है। इसे कोई भी श्रद्धावान् सुन सकता है। जिनके अन्दर सुनने का भाव है, उनने चाहे मन्त्र लिया हो या न लिया हो, वे सब शिष्य हैं और सुनने के हकदार हैं। अर्जुन ने भगवान कृष्ण से कोई गुरुमन्त्र नहीं लिया था। कृष्ण ने गीता में अर्जुन से कहीं नहीं कहा कि ये मन्त्र रट। फिर भी अर्जुन शिष्य है। कृष्ण सुनाते हैं और अर्जुन सुनता है।

पति की मृत्यु से शोक में ग्रस्त तारा को जब भगवान ने उपदेश दिया, तो वहाँ भी गुरुमन्त्र नहीं दिया। वहाँ राम तारा से यह नहीं कहते कि पहले वह उनका मन्त्र ले ले, तब वे उसे शोक-मोह हटाने का उपदेश सुनाएँगे। तारा ने मन्त्र नहीं लिया था, फिर भी तारा का शोक-मोह हट गया था। शोक-मोह हटाने वाली कथा आप भी बिना मन्त्र लिए सुन सकते हैं। कोई भी आदमी सुन सकता है। किसी का भी शिष्य सुन सकता है।

यह ब्रह्मविद्या सबकी है। किन्तु, सबकी तो हमारी तरफ से है; बाकी तो उनकी है, जो ध्यान से सुनें। गंगा तो सबकी है; पर, जो अभागे नहाएँ ही नहीं, उनके लिए गंगा क्या करे? गंगा की तरफ से कोई पक्षपात है क्या? गंगा तो नहीं रोकती कि मत नहाओ। गंगा तो सबको तारने को ही बह रही है। कोई न नहाए, तो न नहाए। प्रवचन की भी एक गंगा ही बह रही है। कोई भी आकर इसमें गोता लगा ले। ऐसा नहीं है कि तुम नहाओगे, तो गंगा में कोई कमी आ जानी है। यद्यपि वह सर्वथा नहीं घटता; पर उसे एक अंश में ले लो। एक केवट नाव ले जा रहा है। उसमें चार यात्री बैठे हैं। यदि दो और बैठ जाएँ, तो उसे क्या फर्क पड़ता है? उसे तो पार जाना ही जाना है।

इन्द्रियों से कर्म न करना, अकर्त्ता होना नहीं है। बुद्धि के द्वारा यह अनुभूति छोड़ देना ही कि कर्त्ता हूँ, अकर्त्ता होना है। जब तुम

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बुद्धि के स्तर पर, विचारों के स्तर पर, कुछ नहीं कर रहे होते, तब मात्र साक्षी होते हो। तुम बुद्धि से साक्षी होते हो। तुम बुद्धि के स्तर पर यह महसूस करते हो कि तुम साक्षी हो। तुम्हें लगे कि 'मैं' हूँ। जो क्रियाएँ हो रही हैं, जो सुनाई दे रहा है, वहाँ 'मैं' केवल हूँ। न 'मैं' सुनने को रोक रहा हूँ और न 'मैं' कर रहा हूँ। अब, जब 'मैं' हूँ, तब न मैं भोक्ता हूँ, न मैं कर्त्ता हूँ।

यह माइक है, जो बिजली से कार्य करता है? क्या यह माइक हमको प्रवचन करने को कहता है? क्या यह प्रवचन करने से हमें रोकता है? बिजली का कनेक्शन है? मैं बीच-बीच में रुक-रुककर बोलूँ, समझाकर बोलूँ, श्लोक बोलूँ, गलत बोलूँ, सही बोलूँ, इससे तो इसे कुछ लेना-देना नहीं है। यह तो यहाँ उपस्थित है। इससे आवाज गुजरती है। 'मैं' चैतन्य हूँ, कोई और नहीं? मैं स्वयं चैतन्य हूँ।

तुम अपने को स्वयं चैतन्य न मानकर यह सोच रहे हो कि तुम ही तो प्रवचन करवा रहे हो। यदि यह बिजली यह सोचे कि वह ही तो प्रवचन करवा रही है, तो क्या उसका यह सोचना सही है? मैं उसकी उपस्थिति में बोल रहा हूँ। मेरे बोलने के लिए इसकी कोई जिम्मेवारी नहीं है। क्या मेरे गलत प्रवचन के लिए वह जिम्मेवार है? इसी तरह से मुझ चेतन की उपस्थिति है और संस्कार के अनुसार बुद्धि बोल लेती है।

इन्द्रियाँ अपने स्वभाव के अनुसार विषय ग्रहण कर लेती हैं। शरीर के अंग अपने-अपने व्यापार को कर रहे हैं। हाथ, पैर, खून और हृदय सब अपनी-अपनी क्रियाएँ कर रहे हैं। और 'मैं'? तुमने प्राण और इन्द्रियों के धर्मों को अपना स्वीकार करके अपने को कर्त्ता कहा। मन और इन्द्रियों के धर्मों को स्वीकार करके भोक्ता कहा। बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों को स्वीकार करके तुमने अपने को ज्ञाता कहा। तुमने अपने को कर्त्ता कहा, भोक्ता कहा। लेकिन,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तुम बुद्धि, मन या इन्द्रियों के द्वारा न तो कर्त्ता हो, न भोक्ता हो और न ज्ञाता हो। तुम मात्र साक्षी हो। तुम केवल चेतन हो। चेतन के अलावा, तुम कुछ भी नहीं हो।

जब तुम यह अनुभव करोगे, तब ध्यान में तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। केवल तुम अपनी सीट पर आ जाओ। तुम जो हो, केवल यह महसूस करो। भगवान कृष्ण ने उपनिषद् वाणी में कैसा सार भर दिया है। जब लाभ होता है, तब समझ में आता है कि क्या भरा है, नहीं तो लगता है कि थोप दिया है।

अर्जुन ने भगवान् से पूछा कि कौन है, जो उसे काम में लगाता है और चैन नहीं लेने देता ? भगवान् ने कहा,—

'काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।'

ये बैरी हैं। इन्हें तू मार। यही तुझे अच्छे काम नहीं करने देते। यही तुझे मुक्त नहीं होने देते। यही तुझे शान्त नहीं होने देते। अर्जुन ने पूछा कि इन्हें कैसे मारूँ ? ये तो दुश्मन हैं। इन दुश्मनों को कैसे मारा जाए ? भगवान् ने कहा कि इनको मारने का बड़ा ही सरल तरीका है। तू विषयों से परे इन्द्रियों को जान; इन्द्रियों से परे मन को जान; मन से परे बुद्धि को जान और बुद्धि से परे आत्मा को, साक्षी को, चैतन्य को जान। तू चैतन्य है, ऐसा जान। जब तू ऐसा जानेगा कि तू साक्षी है, चैतन्य है; तब तू सबको जीत लेगा।

देखो ! भगवान् ने तो जीतने का तरीका भी बता दिया; पर, लोग नहीं करते। भगवान् ने अर्जुन से कहा कि जब तक तू अपने को इद्रियाँ जानेगा, मन जानेगा, बुद्धि जानेगा या देह जानेगा; तब तक तू सफल नहीं होगा। जब तू विषयों से ऊपर इन्द्रियों को, इन्द्रियों से ऊपर मन को, मन के भी ऊपर उसके स्वामी बुद्धि को और बुद्धि के भी स्वामी, बुद्धि के भी साक्षी, बुद्धि के भी सहारे, बुद्धि के भी आश्रय को जानेगा, तब सफल हो पाएगा।

 Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बुद्धि तेरी सत्ता से प्रभावित होकर चलती है। जब तू यह जानेगा कि तू उसका भी स्वामी है, साक्षी है, आत्मा है, तब ये सब अपने-आप कमजोर पड़ जाएँगे। मान लो कि तुमने किसी कारण से दुराचार किया और किसी ने देख लिया; तो सतही आदमी से भी मालिक डरेगा। ऐसा आदमी, जिसका कि बोलबाला है, वह भी सतही आदमी से डरेगा।

तुम जब तक अपने को गलत पा रहे हो, तब तक तुम्हें झेंप लगेगी। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि गलत न होने पर भी, किसी विशेष स्थिति में खड़े होने के कारण, लोग तुम्हें गलत समझ लेते हैं; तब भी तुम्हें झेंप लगती है। क्योंकि, जिस हालत में लोगों ने तुम्हें देखा है, उससे उनको भ्रम हो गया है; सचमुच में तुम बुरे नहीं हो। तुम डरते इसलिए हो कि लोग तो यही कहेंगे कि तुम बुरे हो। तुम ऐसी स्थिति में थे कि अब तुम क्या सबूत दो कि तुममें कोई दोष नहीं था। निर्दोष होते हुए भी, तुम पर दोषारोपण किया गया है।

बहुत दिन हुए बम्बई में लोनावाला में शिविर चल रहा था। वहाँ एक सन्त ने बड़ा ही मजेदार दृष्टान्त दिया था। उसे हम आप लोगों को संक्षेप में सुना रहे हैं। एक व्यक्ति के घर में चोरी हो गई थी। चोरी करने के बाद चोर भाग गए। रास्ते से, उसी जगह से होकर एक आदमी निकल रहा था। वह उस घर के दरवाजे की तरफ से आया था। लेकिन, वह दिखा तब, जब दरवाजे से थोड़ा आगे हो गया था। वह दरवाजे से आगे होने पर दिखा, तो लोगों ने यह समझा कि वह दरवाजे से ही निकला है। कुछ लोग उसके पीछे भागे, तो वह भी भागा और भागकर कहीं छिप गया।

उस घटना के दो-तीन दिन बाद वह पकड़ा गया। उसका वहाँ से निकलना और उसके पीछे लोगों के भागने पर, उसका वहाँ से भागना; उसके विरुद्ध सबूत हो गया। यदि वह न भागता, तो कुछ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और ही बात होती। वह भागा तो इसलिए था कि बिना मतलब पकड़ा न जाए। उसकी कोई गलती नहीं थी। लेकिन, भागने से यह लगा कि वह अपराधी है। उसके विरुद्ध मुकदमा चला और उसे सजा हो गई। उसने सजा भी काट ली। उसके बाद वह बहुत शरमाता था। कुछ दिनों के बाद धीरे-धीरे यह राज खुला कि चोरी किसी और ने की थी। असली चोर पकड़ा गया। असली चोर के पकड़े जाने के बाद सब लोगों ने यह मान लिया कि वह चोर नहीं था; वह तो धोखे से पकड़ा गया था। तब उसे राहत मिली। वैसे वह यह जानता था कि उसने चोरी नहीं की थी। पर, समाज का तो बड़ा ही विचित्र हाल है। वह निरपराधी को भी अपराधी मान लेता है।

सारा समाज हमको नहीं जानता। हम खुद भी अपने को नहीं जानते। यहाँ तो गड़बड़ यह है कि तुम खुद ही अपने को कर्त्ता जानते हो। तुम यही जानते हो कि तुम आदमी हो, तुम जन्मे हो और तुम मर जाओगे। यदि हम तुमसे कहलवाएँ कि तुम नहीं जन्मे हो, तो कह भी देते हो। पर, भीतर से तुम्हें लगता है कि तुम यह कह तो रहे हो कि तुम नहीं जन्मे हो, पर अभी सन्तोष नहीं है। सन्तोष क्यों नहीं है? क्योंकि, अभी बोध ही नहीं हुआ है।

बिना बोध के सन्तोष कभी भी नहीं हुआ करता। बिना बोध के अपरोक्षानुभूति भी नहीं होती। भगवान शंकराचार्य जैसे लोगों को यह सब देखकर ही ग्रन्थ लिखने पड़े। अपरोक्ष अनुभूति अर्थात् स्वरूप का स्पष्ट बोध। स्पष्ट बोध के लिए कुछ करना ही बाधा है। यहाँ तक कि दिमाग में जो सोचते हो या करते हो, वही बोध में बाधा है। नहीं तो अपरोक्षानुभूति में क्या लगता है? केवल आपकी चेतनता चाहिए।

आप चाहे देखते रहो, चाहे सुनते रहो, चाहे जप करते रहो, चाहे श्वास लेते रहो और चाहे ध्यान में बैठे रहो; क्या उस समय

 Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

चैतन्य की चैतन्यता मौजूद नहीं रहती ? लेकिन, तुम्हें तो अभी चैतन्य की चैतन्यता ही स्पष्ट नहीं है। चैतन्य की चैतन्यता में मात्र इतना और जोड़ लेना है कि चेतन, चेतन ही है; इसका वृत्ति से और इन्द्रियों से सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है।

आपके मन में ऐसी कुण्ठाएँ हैं कि आप बुरे हैं। यह आपके ठीक से सोच न पाने के कारण है। असल में आप पापी नहीं हैं। असल में आप न तो कर्त्ता ही हैं और न भोक्ता ही हैं। वास्तव में; तुम हो तो कुछ और, पर क्या हो, यह जान ही नहीं पा रहे हो ? इसलिए, यह न जान पाना ही सारे पापों की जड़ है।

ज्ञान के समान पवित्र कुछ नहीं है। ज्ञान के समान पवित्र और अज्ञान के समान अपवित्र कुछ भी नहीं है। अज्ञान ही सभी पापों का जनक है। ज्ञान या आत्मज्ञान ही सम्पूर्ण पुण्यों को उदय करने वाला है। इसलिए, जिसने आत्मा को जान लिया, उसने अपना उद्धार कर लिया; अपने जीवन का उद्धार कर लिया। उसका मन पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जाएगा। उसके मन के भीतर अपार तृप्ति आ जाएगी। जन्म-जन्मान्तरों की कुण्ठा मिट जाएगी।

मन के अन्दर कई ग्रन्थियाँ हैं। पाप ग्रन्थि है, पुण्य ग्रन्थि है और देह ग्रन्थि है। यही चिद्-जड़ ग्रन्थि है। तुम्हारा कर्त्तापने और भोक्तापने की, अल्पता या स्वल्पता की ग्रन्थि से छुटकारा नहीं। तुम वास्तव में पूर्ण हो, परंब्रह्म हो, परमात्मा हो; लेकिन, तुम्हें इसका ज्ञान नहीं है।

अज्ञान के कारण ही तुम्हारे अन्दर कितनी ही ग्रन्थियाँ हैं, कितने ही कॉम्पलेक्स हैं। तुम धनवान् होना चाहते हो। तुम बड़ा होना चाहते हो। तुम महान् होना चाहते हो। तुम ऐसी ही अनेक कामनाओं की पूर्ति करने में लगे हुए हो। यह ऐसा ही है कि सूर्य जुगनू से उजेला माँग रहा हो। अँधेर हो गया है कि सूर्य जुगनू से प्रकाश माँगता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तुम साक्षी होकर, आत्मा होकर, ब्रह्म होकर, चीजों से जीवन माँगते हो; चीजों से आनन्द माँगते हो। तुम उनके बल पर, अपने को उनके सहारे कर बैठे हो। असल में, इसमें तुम्हारी वृत्ति का दोष है। इस दोष को सत्संग के द्वारा, बुद्धि के द्वारा, हटाया जा सकता है।

अब शान्त और समाहित होकर, अपनी दृष्टि को अपनी आँखों के पास, बिलकुल आँख की पुतली में ही ले आओ। जैसे खुली आँखों से देखने के लिए बिलकुल आँखों पर ही आ जाते हो; ऐसे ही बिलकुल अपनी आँखों पर आ जाओ। किसी चीज को देखने की इच्छा न रखते हुए, आपकी केवल दृष्टि मौजूद रहे। आप दृष्टि-रहित नहीं हैं; दृश्यरहित भले ही हो जाएँ। आप दृष्टिरहित नहीं हैं; दृश्यरहित हैं।

एकाग्रता की सुविधा के लिए, यदि कोई अपनी दोनों हथेलियाँ अपनी आँखों पर रखना चाहे; तो रख ले। दोनों हाथों की दो-दो उँगलियों को आँखों पर रखना चाहे, तो रख ले। कोई किसी की नकल न करे। आप उँगलियों से या हथेलियों से, अपनी आँखें ढक सकते हैं। अपने मन से, चाहे जिस तरह से भी, अपनी पलकों को अपनी हथेलियों अथवा उँगलियों से अच्छी तरह से दबाकर, थोड़ी देर के लिए मन को पूरी तरह से आँखों पर ही एकाग्र कर दें। कुछ देखने की इच्छा न हो। कुछ जानने की भी इच्छा न हो; किन्तु, आपकी दृष्टि स्थिर हो। आपकी दृष्टि की एकाग्रता ही पहला कदम है।

दूसरा कदम चित्त-वृत्तियाँ हैं। दृष्टि की एकाग्रता होने पर भी, कभी-कभी आपकी चित्त-वृत्ति, किसी अन्य क्रिया अथवा अन्य विषय में जाएगी। तब, आपको उस वृत्ति को भी चुपचाप जानना है और उसे भी स्थिर कर देना है। दृष्टि की एकाग्रता पहली साधना है और चित्त-वृत्ति की एकाग्रता दूसरी साधना है।

आगे दृष्टि की एकाग्रता और वृत्ति की एकाग्रता की भी जरूरत

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

नहीं है। जो भी कुछ है, उसको आपको साक्षी की तरह, दृष्टा की तरह, चेतन रहते हुए केवल प्रकाशित करना है। आपको देह बनकर नहीं, इन्द्रियाँ बनकर नहीं, वृत्तियाँ बनकर नहीं, अपने-आपको चैतन्य मानकर सब-कुछ प्रकाशित करना है। पशु भी इन्द्रियों के द्वारा प्रकाशित करते हैं। सभी इन्सान वृत्ति के द्वारा प्रकाशित करते हैं। किन्तु, तुम चैतन्य हो; तुम वृत्ति को भी प्रकाशो और वृत्ति के विषय को भी प्रकाशो। वृत्ति और वृत्ति के विषय, दोनों को, तुम ही प्रकाशित कर रहे हो। अन्तःकरण और अन्तःकरण के विषय, दोनों को, तुम ही प्रकाशित करते हो। संसार और देह, मनोवृत्ति और मनोवृत्तियों के विषय, सब-कुछ दृश्य हैं।

भले ही तुम्हारे भीतर शरीर के स्तर पर कुछ हो रहा हो; इन्द्रियों के स्तर पर भी कुछ हो रहा हो; मन के स्तर पर भी कुछ हो रहा हो; बुद्धि के स्तर पर भी कुछ विचार हो रहा हो; लेकिन, तुम एक ही निर्णय करो कि तुम इनमें से कुछ भी नहीं कर रहे हो। कुछ हो रहा है। होना बन्द नहीं है। जो बन्द न हो, उसे होने दो; लेकिन, तुम अपनी बुद्धि की गुहा में लौट जाओ। अपने विचार की गुहा में लौट जाओ और वहाँ बुद्धि के स्तर पर जाकर यह निर्णय करो कि क्या तुम करने वाले हो ? बुद्धि अपने-आप मशीन की तरह काम करती है। ये इन्द्रियाँ यंत्रवत् काम करती हैं। यह शरीर अपने-आपसे ही अपनी प्रक्रिया में काम कर रहा है। मैं सिर्फ चैतन्य तत्त्व हूँ; साक्षी तत्त्व हूँ। मैं शान्त हूँ।

तुम कुछ करोगे, तो चूक जाओगे। जरा-सा करने का ख्याल भी करना, मुक्ति के लिए जरूरी नहीं है। ध्यान के लिए ध्यान करूँगा, यह भी जरूरी नहीं है। आपका केवल होना ही काफी है। सिर्फ आपकी उपस्थिति हो। आप चैतन्य हैं। चाहे आँख में, चाहे कान में, चाहे देह में, चाहे श्वास में, चाहे शून्य में, चाहे बुद्धि में और चाहे मन में; जहाँ भी तुमको अनुभूति हो, तुम्हारी ही

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उपस्थिति है। तुम्हारी उपस्थिति से ही सब प्रतीत हो रहा है। लेकिन, तुम इसमें किसी तरह का हस्तक्षेप मत करो, बाधा मत डालो।

जिनको वृत्ति द्वारा ज्ञान होता है, उनको ज्ञान कभी होता है और कभी नहीं होता। जो चीजें वृत्ति द्वारा प्रतीत होती हैं, उनका ज्ञान कभी होता है और कभी वृत्ति के हट जाने से उनका ज्ञान नहीं होता। मैं आप लोगों को एक सूत्र बता रहा हूँ। आप जब भी ध्यान में बैठेंगे, तो आपकी वृत्ति कहीं होगी और आपको उसका बोध होगा। जब वृत्ति वहाँ से हट जाएगी, तो उसका बोध न होकर, उसका बोध होगा; जहाँ वृत्ति अब है। यद्यपि, वृत्ति द्वारा जिसका बोध होता है, उसके भी प्रकाशक तुम ही हो; किन्तु, वृत्ति माध्यम होने के कारण, वृत्ति परिवर्तनशील होने के कारण, कभी उसका ज्ञान होगा और कभी नहीं होगा। यह स्वाभाविक है। इसलिए, इसमें बुरा मत मानो।

दूसरी बात यह है कि तुम्हें वृत्ति का ज्ञान होता है कि वृत्ति कहाँ है, क्या कर रही है, कब गई, कब लौटी, कब स्थिर रही और कब चंचल हो गई ? तुम्हें वृत्तियों का ज्ञान स्वाभाविक रूप से हो रहा है। लेकिन, तुम्हें इस समय किसी ज्ञान की जरूरत नहीं है। वृत्ति द्वारा न तो किसी को जानने की चेष्टा करो और न वृत्तियों को ही बहुत महत्त्व दो। वृत्तियाँ अपने-आप उठेंगी और जानी जाएँगी। जिस क्षण जैसी वृत्ति होगी, उस क्षण ही वैसी वृत्ति का ज्ञान होगा। किन्तु, एक क्षण ऐसा भी आएगा, जब वृत्तियाँ भी शान्त हो जाएँगी; लेकिन, साक्षी उपस्थित होगा, चैतन्य उपस्थित होगा। चैतन्य न तो कभी गैरहाजिर होता है और न ही विकारी होता है। चेतन तत्त्व, न तो प्रकट ही होता है और न कभी समाप्त ही होता है। सबमें परिवर्तन होता रहता है। निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, भय, शोक, शरीर, मन, इन्द्रियाँ और पदार्थ सब बदलते रहते हैं;

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

किन्तु, यह साक्षी तत्त्व नहीं बदलता।

जब तुम्हारी वृत्ति आँखों पर हो, तब भी ध्यान रखो कि तुम चेतन हो। जब वृत्ति श्वास पर हो, तब भी ध्यान रखो कि तुम चेतन हो। जब शून्य में हो, तब भी तुम चेतन हो। कुछ भी न सोचो। शरीर बैठा है और तुम चैतन्य हो। तुम केवल चेतन हो। न कुछ जानना है और न ही किसी तरफ ध्यान देना है। किसी भी चीज का ख्याल करने की जरूरत नहीं है; बल्कि, अपने-आप भी यदि कुछ ख्याल में आ जाए, तब भी यही कहो कि यह वृत्ति द्वारा प्रतीत हुआ है। इसका प्रकाशक तो 'मैं' ही हूँ। जब वृत्ति लौट आएगी, तब प्रतीति रुकेगी; लेकिन, तब भी चेतन 'मैं' ही रहूँगा। मेरी चेतनता पदार्थ के प्रकाशित करने में भी है और वृत्ति के जाने में और वृत्ति के लौट आने में भी है। मेरी चेतनता में कोई परिवर्तन नहीं है। सिर्फ, वृत्ति के साथ जाने से मुझे अपना जाना और वृत्ति के साथ लौटने से मुझे अपना लौटना लगता है। वृत्ति यदि चलना बन्द कर दे, तो मैं अचल मालूम पड़ूँगा। किन्तु, यह ज्ञान अधूरा है।

वृत्ति के स्थिर होने पर मेरी समाधि लग गई, यह ज्ञान योगियों का है; वेदान्तियों का नहीं। वेदान्तियों के ज्ञान में तो वृत्ति के प्रवाह में साक्षी रहना है, असंग रहना है, निष्काम रहना है; वृत्ति से तादात्म्य नहीं करना है। जैसे स्वप्न से जगते ही, स्वप्न का बाध कर देते हो; ऐसे ही वृत्ति का तुरन्त बाध कर दो। जब दूसरी वृत्ति उठे, तो उसका भी बाध कर दो। जैसे हर बार जगकर स्वप्न तिरोहित हो जाते हैं; ऐसे ही प्रत्येक वृत्ति, जो पैदा होती है, वह स्वप्नवत् कल्पना है; इसलिए, वृत्ति को वृत्ति कहकर, कल्पित करके, तुरन्त छोड़ दो। कुछ नहीं है और अन्त में तुम शुद्ध हो, तुम मुक्त हो, तुम साक्षी हो और तुम अविनाशी हो।

तुम स्थिरता के लिए आग्रह मत करो। मन में कुछ करने का

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

संकल्प ही मत बनाओ। संकल्प बना लोगे, तो फिर तुम्हें लगेगा कि यह नहीं कर पाए, यह नहीं हुआ। ऐसा करना चाहिए। तुम अपने मन के भीतर कोई चुनाव ही न करो; पूरा मुझ पर छोड़ दो। तुम बिलकुल मत सोचो। कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। तुम सिर्फ चेतन हो; तभी तो तुमको देह की प्रतीति होती है, मन की प्रतीति होती है, शून्य की प्रतीति होती है और स्थिरता की प्रतीति होती है। क्योंकि, तुम चेतन हो, इसलिए प्रतीतियाँ होती हैं। ये प्रतीतियाँ बदलती रहती हैं; लेकिन, तुम्हारी उपस्थिति बनी रहती है।

अब आधा मिनट तक केवल यह और ख्याल करो कि तुम्हारी चेतनता है अथवा नहीं? किसी भी क्रिया में, किसी भी व्यवहार में, किसी भी हालत में, अभी तुम टटोलो कि चेतनता रहती है कि जाती है?

आप सुनने में, देखने में, बोलने में और बैठने में यह देखो कि चेतनता है या नहीं? चेतनता का ख्याल रखते हुए, आप धीरे से ध्यान छोड़ दें। इसी स्थिति को स्मरण में रखते हुए, आप यहाँ से जाएँ। □

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

स्वप्न और जाग्रत का साक्षी

आप लोग कई दिनों से वेदान्त की चर्चा सुन रहे हैं। आपको दृष्टा और दृश्य में दूरी मालूम पड़ती है। देखने वाले को, दिखने वाला पदार्थ दूर लगता है; यह सबका निजी अनुभव है। जिसे आप देखते हैं, वह आपको अलग लगता है। दिखने वाला, आपको कभी 'मैं' नहीं लगता। आँखों से तुमने देखा, तो तुम उसे कहते हो 'यह है' और जो 'यह है' उसको जानने वाले तुम, अपने को कहते हो 'मैं हूँ'।

साक्षी और दृष्टा में इतना ही फर्क है कि साक्षी से साक्षी-भाष्य पदार्थ पृथक् नहीं होते; किन्तु, दृष्टा से ज्ञात होने वाले पदार्थ पृथक् हुआ करते हैं या पृथक् दिखा करते हैं। यूँ समझो कि साक्षी-भाष्य पदार्थ, जब साक्षी-भाष्य लगते हैं; तब साक्षी से पृथक् नहीं होते; किन्तु, साक्षी-भाष्य पदार्थ, जब इन्द्रिय-भाष्य लगते हैं; तब वे पृथक् मालूम पड़ते हैं।

जब साक्षी से पदार्थ पृथक् लगते हैं, तब समझो कि तुम स्वप्न देख रहे हो। इसी का नाम निद्रा है। जब साक्षी से पृथक् कोई पदार्थ नहीं लगता, तब साक्षी मात्र ही सत्य लगता है। पदार्थ की दूरी, भिन्नता और उसकी सत्यता निवृत्त हो जाती है, इसी का नाम जाग्रत है। स्वप्न में, साक्षी से प्रतीत होने वाले पदार्थ जिस समय न तो दूर लगें, न भिन्न लगें, न उनकी अलग सत्ता लगे; तब समझो जग गए और जब साक्षी-भाष्य पदार्थ अलग-अलग लगें, तब समझो कि तुम स्वप्न देख रहे हो। यह सच है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यहाँ हम स्वप्नों का वर्णन नहीं, एक तथ्य का विवेचन कर रहे हैं। यदि ध्यान दोगे, तो मालूम पड़ेगा कि स्वप्न में यद्यपि साक्षी ही स्वप्नों का प्रकाशक था, साक्षी से पेड़, पहाड़, व्यक्ति, पति, पत्नी, पदार्थ, धरती और आकाश की दूरी नहीं थी; किन्तु, यह बात जगने पर मालूम हुई। यह बात स्वप्न में मालूम नहीं हुई। स्वप्न में, साक्षी-भाष्य पदार्थ भी साक्षी-भाष्य नहीं लगते; साक्षी में अध्यस्त नहीं लगते हैं। वे साक्षी में कल्पित नहीं लगते; बल्कि, हमको सब सत्य लगते हैं। अनेक सत्य लगते हैं। सबकी अलग-अलग हस्ती प्रतीत होती है। मेरी हस्ती, तुम्हारी हस्ती, पेड़-पहाड़ की हस्ती और जड़-चेतन की हस्ती अलग-अलग प्रतीत होती है। स्वप्न में अनेक सत्य लगते हैं, जबकि सत्य एक होता है।

अभी हम स्वप्न की बात बता रहे हैं और कुछ मत समझना। यह स्वप्न की असलियत है कि स्वप्न में, यद्यपि साक्षी के सिवाय, जानने वाले के सिवाय, स्वप्न के पदार्थ न तो सत् होते हैं और न अलग-अलग होते हैं। किन्तु, जब तक हम सोए रहते हैं, तब तक हमें अलग-अलग दिखते हैं और सब सत्य दिखते हैं। हम सत्य, स्त्री सत्य, आकाश सत्य, सूर्य सत्य और गंगा-जमुना भी सत्य दिखती हैं। स्वप्न में सभी चीजें सत्य लगती हैं। यह नहीं कि और सत्य लगता है, 'मैं' सत्य नहीं लगता। सबकी सत्यता मालूम पड़ती है; किन्तु, सत्य उन सबमें एक होता है। वह कौन होता है? चेतन। वह कौन होता है? साक्षी।

जो पदार्थ साक्षी में दिखते होंगे, वे साक्षी से दूर भी नहीं होते होंगे। यह नियम है कि साक्षी-भाष्य पदार्थ, साक्षी को प्रतीत होने वाला जगत्, साक्षी से बिलकुल दूर नहीं होता। नियम यह है कि जो चीज चेतन द्वारा ज्ञात होगी, साक्षी द्वारा भाषित होगी, वह चूँकि साक्षी अधिष्ठान है, साक्षी ब्रह्म है, साक्षी आश्रय है; इसलिए, साक्षी आश्रय से कोई पदार्थ दूर हो ही नहीं सकता। दूर होगा,

Digitization by American Academy of Indic Studies-AAIS(USA)

तो प्रतीत ही नहीं होगा; उसकी हस्ती ही नहीं हो सकती।

स्वप्न में बना पहाड़ दिखने पर, यद्यपि, आदमी को अपना 'मैं' अलग और पहाड़ की हस्ती अलग लगती है; क्योंकि, साक्षी में ही स्वप्न का आदमी और साक्षी में ही स्वप्न का पहाड़ बना है; एक साक्षी में ही वे दोनों हैं; किन्तु, उस समय स्वप्न के पहाड़ की आत्मा और उस स्वप्न को देखने वाले व्यक्ति की आतमा, जो स्वप्न में पहाड़ को देख रही है; एक है। दोनों का सत्य एक है।

जो सत्य आदमी में रहता है, वही सत्य पहाड़ में रहता है और जिस सत्य में पहाड़ रहता है, उसी सत्य में आदमी रहता है। उसी में बीच की दूरी रहती है; उसी में समय रहता है। उसी में व्यक्ति और वस्तुएँ रहती हैं। लेकिन, यह बात स्वप्न में कोई नहीं जान पाता। सच तो यह है कि जागे हुए लोग भी इस पर ध्यान नहीं देते, तो सोने वाले क्या ध्यान देंगे। लोग जगने पर भी ध्यान नहीं देते कि स्वप्न में वे ही सब-कुछ थे।

स्वप्न से प्रभावित हुए लोग, जगकर भी स्वप्न में हुए अनुभव की बातें ही बोलते हैं। उदाहरण के लिए स्वप्न में तुम्हारी खोपड़ी पर कोई डण्डा मार दे, तो जग जाने के बाद तुम यह ही अनुभव करोगे कि स्वप्न में फलां आदमी ने तुम्हारे डण्डा मारा था। तुम डण्डा मारने वाले को और समझते हो और जिसको डण्डा मारा गया उसको 'मैं' समझते हो और कहते हो कि मेरे को डण्डा मारा। जग के भी नहीं कहते कि मैं ही डण्डा मारने वाले में मौजूद था और मैं ही उसमें मौजूद था, जिसको डण्डा मारा गया। जिसको डण्डा मारा गया वह भी झूठा और जिसने डण्डा मारा, वह भी झूठा। समय भी झूठा, डण्डा भी झूठा, चोट भी झूठी और दुःख भी झूठा। एक सच में, सब कल्पित है।

क्या जग के तुम इस भाषा में सोचते हो, जिस भाषा में मैं बोलता हूँ? जग के भी तुम यही सोचते हो कि मुझे उसने डण्डा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मारा; अर्थात् जग के भी तुम साक्षी नहीं हो। जग के तो कहते कि तुम स्वप्न के दृष्टा हो; स्वप्न झूठा है; 'मैं' देह नहीं था। जग के भी विचार यही उठ रहा है कि 'मैं' देह था। यही विचार उठता है कि मेरे डण्डा मारा।

स्वप्न ने तुमको इतना प्रभावित कर लिया है कि जगकर भी स्वप्न से प्रभावित भाषा का ही प्रयोग कर रहे हो। यदि तुम जगे हुए व्यक्ति की भाषा में बोलोगे, तो यह बोलना चाहिए कि 'मैं' स्वप्न में पिता लगता था, वह तो 'मैं' ही नहीं था। स्वप्न में जो और लगता था, वह और ही नहीं था। स्वप्न में और लगता था कि अब और है ? जगे हुए के लिए मारने वाला और है और जगे हुए को मारने वाला और है। जगे हुए के लिए पीने वाला पानी और है और पीने वाला और है। जगे हुए के लिए पीने वाला भी वैसा ही और जिसको पिया गया, वह भी वैसा ही। इस पर गहराई से विचार करिए।

एक बात तुम यह भी ध्यान में रखो कि कभी-कभी स्वप्न से जगकर, आँख बन्द करके, फिर पूरे स्वप्न को देखा करो या पूरे स्वप्न का स्मरण किया करो। जग के स्मरण किया उसकी, और स्वप्न में जो देखा उसकी, दोनों की तुलना करो कि क्या फर्क है ? जागो और जग के यह देखो कि क्या सच है ? जग के इस जगत् पर विचार मत करना। इस जगत् को ऐसे समझना कि अभी तुम यहाँ आए ही नहीं हो; सिर्फ जग गए हो। आप सिर्फ जगे हैं और जग के स्वप्न को ही याद कर रहे हैं। इस जगत् से आपका कोई लेना-देना नहीं है। यह है ध्यान का तरीका।

जागो और जग के फिर आँखें बन्द करो। आँखें बन्द करने के बाद जितना जग के देखते हो, उतने को तो करो परे और सारे संसार को परे हटाकर फिर देखो। जो रात में देखा था, फिर देखो। सारे स्वप्न को सामने लाओ। स्वप्न को, मन के साक्षी के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सामने फिर लाओ। साक्षी के सामने लाके देखो कि इसमें क्या है? याद करो। इसमें क्या-क्या दृश्य हैं? जिसने रात स्वप्न देखा था, वही अब याद कर रहा है। याद किसके सामने हो रही है? जिसने रात में देखा था।

जिसने स्वप्न देखा था, उसी साक्षी के रहते, उसी को फिर सामने लाओ और पहचानो कि यह वही वाला है। इसके बाद पूछो कि इस सारे में से तुम्हारे साक्षी से कितना ज्ञान मिला? तुम्हारे ज्ञान से कितना दूर है पहाड़? तुम्हारे ज्ञान से कितना भिन्न था तुम्हारा देह और तुम्हारे ज्ञान से कितनी दूर थे स्वप्न के पेड़, पहाड़, आकाश और धरती? और अब वे कितनी दूर हैं? वे सच लगते थे। वे सच हैं कि साक्षी सत्य है? वे दूर और नजदीक लगते थे। एक नजदीक लगता था, एक दूर लगता था। लेकिन, जग के पूछो कि मुझ साक्षी से पहाड़ कितनी दूर रहता है; व्यक्ति कितनी दूर रहता है? जमीन और आसमान कितनी दूर रहते हैं? मुझ चेतन साक्षी से वे कितनी दूर रहते हैं, यह जगकर के पूछो। जग के, साक्षी से पूछो कि क्या सचाई है और स्वप्न से पूछो कि रात में कैसा लगता था?

गोस्वामीजी कहते हैं,—

'मोह निसां सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।'
'एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी।'

पहले जगत् में मत जागो। जगत् पर विचार मत करो। जगत् को छोड़ो। बहुत दिन सुन लिया वेदान्त कि जगत् मिथ्या है। छोड़ो जगत् को। स्वप्न तो मिथ्या है। जगत् को छोड़ो, स्वप्न का द्वैत तो मिथ्या है। स्वप्न का मेरा और पहाड़ का भेद तो झूठा है। स्वप्न का मेरा और मेरे बच्चे का, मेरा और मेरे घर का जो भेद लगता था, वह झूठा है। दीवाल में और आदमी में फर्क झूठा था कि सच्चा? उनमें जो सच्चाई लगती थी, वह झूठी थी कि सच्ची?

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सचाई तो सिर्फ अपनी थी। पेड़ में भी, पहाड़ में भी, अपने में भी, पराये में भी, आप ही थे। आप सबमें थे, पर सबमें देख नहीं पा रहे थे। जरा जग कर के देखो कि सारे स्वप्न में तुम्हीं विद्यमान थे और तुमसे पृथक् न तो पहाड़ का एक अणु था और न देह के खून का एक भी कतरा था। न तुमसे भिन्न जमीन थी और न तुमसे भिन्न सागर था। न तुमसे भिन्न चाँद और सूर्य ही था। स्वप्न भी तुमसे भिन्न नहीं था। समय भी तुमसे भिन्न नहीं था। स्वप्न में जो घण्टों का समय लगा था, वह सब तुम्हारे साक्षीपने में कल्पित था।

कल्पित वस्तु अधिष्ठान से दूर नहीं होती। बनावटी वस्तु सत्य से दूर नहीं होती। स्वप्न में सब बनावटी था। स्वप्न में साक्षी के अलावा पहाड़, आदमी, औरत, जमीन और आसमान सभी झूठे थे। वे साक्षी में अध्यस्त थे, केवल साक्षी सच्चा था। साक्षी जो स्वप्न में था, वह अभी भी है। किन्तु, तब जो बुद्धि से सोचता था, वह सम्मोहित हुआ सोच रहा था। अब, वही साक्षी जगकर सोचता है। सिर्फ, बुद्धि यह वाली है। साक्षी वही है, बुद्धि यह अच्छी है। यह जागी बुद्धि है, वह सोई बुद्धि थी। साक्षी दोनों में वही है।

स्वप्न वाली बुद्धि भी तुम्हारी थी और यह जागी वाली बुद्धि भी तुम्हारी ही है। पर, इस समय वाली बुद्धि से जब देखते हैं, तो स्वप्नों का हिसाब कुछ और है और उस समय वाली बुद्धि से कुछ और लगता था। जगकर तुम साक्षी हो। जगकर तुम इस पर विचार करो। साक्षी की सचाई पर जब विचार करोगे, तो मालूम पड़ेगा कि सब कल्पित था और केवल साक्षी ही सच्चा है। जागा हुआ आदमी, अपनी बुद्धि से यह जान सकता है।

आँखों से दिखाई न देने पर, डॉक्टर तुम्हारी आँख बना देता है। लेकिन, भगवान कृष्ण ने अर्जुन को अपनी नजर दी थी।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हमने सिद्ध महात्माओं के बारे में सुना है कि किसी के लड़का नहीं होता था; सन्त ने आशीर्वाद दिया, तो लड़का हो गया। किसी सन्त ने तो यहाँ तक किया है कि अपना शरीर छोड़ दिया और भक्त के यहाँ जन्म ले लिया। सन्त ने लड़का नहीं दिया, स्वयं ही लड़का बन गये।

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को अपनी नजर दे दी थी। भगवान् कृष्ण ने गीता में जैसा कहा है, अर्जुन को वैसा ही दिखने लगा था। हम जाग रहे हैं। जागकर, हम जैसा स्वप्नों को देखते हैं, ऐसा ही तुम भी देखोगे; यदि, हम तुमको जगा दें। तुम्हें वहाँ लाके खड़ा कर देना है, जहाँ से तुम भी वैसा ही देखो, जैसा कि हम देखते हैं या जैसा कोई भी जागा आदमी देखता है।

भगवान् कृष्ण ने गीता में यही तो कहा है,—

'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।'

जिस रात्रि में सारे लोग सोते हैं, वहाँ ज्ञानी जागते हैं। जहाँ अज्ञानी सोते हैं, वहाँ ज्ञानी जागते हैं। जहाँ ज्ञानी सोते हैं, वहाँ अज्ञानी जागते हैं; अर्थात् जो ज्ञानियों की निगाह में सच है, वह अज्ञानियों की निगाह में झूठ है और जो अज्ञानियों की निगाह में सच है, वह ज्ञानियों की निगाह में झूठ है। जो स्वप्न देखने वालों को सच दिखता है, वह जगने वालों को झूठ दिखता है और जो जगने वाले देख रहे हैं, वह स्वप्न देखने वालों को नहीं दिखता।

जागा हुआ व्यक्ति अपने को साक्षी देखेगा, सब नहीं देख सकते। जिसको हम जागा हुआ व्यक्ति कह रहे हैं, वह जागकर यह देखता है कि स्वप्नों का वह साक्षी था; वह सत्य था और सब झूठा था। ऐसा जागा हुआ व्यक्ति ही देखता है। स्वप्न वाला मैं; आदमी, औरत, पेड़ और पहाड़ को सत्य देखता है। वह अपने को भी झूठा ही देखता है। वह आदमी नहीं है, असल में वह साक्षी ही

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है। लेकिन, स्वप्न में वह अपने को आदमी, किसी को औरत, किसी को बेटा और किसी को बाप देखता है। वह हजारों सत्य देखता है और अपने को भी वैसा ही वाला सत्य देखता है। वह सत्य तो है; लेकिन, वह अपने को देह की तरह सत्य देखता है कि साक्षी की तरह ? वह अपने को साक्षी की तरह सत्य नहीं, एक आदमी की तरह सत्य देखता है। वह औरों को भी स्थूल सत्य देखता है।

जागा हुआ आदमी साक्षी, निराकार और चेतन को सत्य देखेगा और सोया हुआ आदमी सबको सत्य देखेगा। उसी सबमें वह अपने को भी एक देखता है। वह साक्षी को बिलकुल नहीं जानता। साक्षी का उसे पता नहीं है। जैसे सब सत्य हैं, उसी सबसे मिलता-जुलता वह स्वयं भी है। यह स्वप्न की दशा है। जागने पर तो जैसे सब झूठे हैं, वैसे ही रात वाला अपना भी सत्य झूठा है।

उस सबमें से सत्य कौन था ? जिसने सब कुछ जाना था, जिसने सब कुछ देखा था, जिसको सब कुछ मालूम पड़ा था, वह सत्य था। वह, जो सबमें था, जिसमें सब था और जिसका सब था, वह सत्य था। साक्षी, जिसको याद है कि देखा था; जो आँख बन्द करके भी देख सकता है; जो कान बन्द करके भी सुन सकता है; वही सत्य है। जिसने देखा था, वही गवाह हो सकता है। जिसने देखा था, वही चश्मदीद गवाह है।

सच तो यह है कि उसने किसी आँख से नहीं देखा था। किसी चीज को तुम आँखों से देख लो और फिर आँखों को बन्द कर लो। फिर मैं तुम्हें दूसरी चीज दिखाऊँगा, फिर तीसरी चीज दिखाऊँगा और तुमसे पूछूँगा कि वे क्या हैं ? क्या तुम बता पाओगे ? बिना देखे तुम नहीं बता पाओगे। यदि स्वप्न में, तुम्हीं ने स्वप्न को न देखा होता, तो स्वप्न कैसा था, क्या था, उसका वर्णन तुम नहीं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कर सकते थे। इन आँखों ने स्वप्न नहीं देखा था। स्वप्न में, इस शरीर ने कुछ नहीं किया था। सब कुछ तुमने ही देखा था।

अब तुम शास्त्र की एक बात सुन लो। पहले इतना जानो, जिसमें कोई शक नहीं है। शास्त्र आगे कहता है,—

'जाग्रत स्वप्न सुषुप्त्यादि प्रपञ्चं यत् प्रकाशते।'

शास्त्र कहता है कि जिसने स्वप्न प्रकाशा था, जिसने नींद को प्रकाशित किया था, वही इस जगत् को प्रकाश रहा है। 'वही' यह और जोड़ लो। शास्त्र कहता है कि जो स्वप्न को प्रकाशता था, वही अब जाग्रत में प्रकाशता है। जाग्रत में भी आँख नहीं प्रकाशती, कान नहीं प्रकाशते और मन नहीं प्रकाशता। अब भी साक्षी ही जगत् को प्रकाश रहा है। जिस 'मैं' ने रात में स्वप्न देखा था, वही 'मैं' अब देख रहा है। यह आँख दूसरी है, यह देह दूसरी है, यह मन दूसरा है; पर, 'मैं' वही हूँ।

तुम वही कौन हो? यदि, स्वप्न का साक्षी निराकार, निर्विकार है, सबके खतम होने पर भी खतम नहीं हुआ, तो वह साक्षी, अभी आँख के खतम होने से, हाथ के खतम होने से, मन के खतम होने से, खतम होने वाला नहीं है। इस बात को गहराई से देखो। मैं फिर कहता हूँ कि लाख तुम साधना करो; लेकिन, गुरू के मार्ग-दर्शन के बिना, तुम इसे नहीं जान सकते। क्योंकि,—

'जे सौ चन्दा उगवै सूरज चढ़ै हजार।
एते चानण होन्दियाँ गुर बिन घोर अंधार।'

गुरु के बिना सुरति सिद्ध नहीं होगी और न गुरु के बिना चैन ही मिलेगा। गुरु के बिना अन्धकार भी नहीं मिटेगा।

गोस्वामीजी कहते हैं,—

'गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई।
जौं बिरंचि संकर सम होई।'

बिना गुरू के संसार में ब्रह्मा भी नहीं तर सकता। लोगों ने दूसरा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दोहा भी बना दिया है;—

'ब्रह्मा विष्णु महेश से, जो आधिक हो जाए।
बिनु गुरु भव निधि ना तरे, कहैं निगम अस गाए।'

ऐसा वेद कहते हैं कि कोई भी, बिना गुरू के तर नहीं सकता. लेकिन, साथ में इस बात को भी ध्यान में रखना है—

'हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई।'

केवल चढ़ौती चढ़ाने भर से गुरू तुम्हें मुक्त नहीं कर सकता। तुम चढ़ौती चढ़ाकर भी मुक्त नहीं हो सकते। तुम यह मत समझो कि तुमने पाँच सौ रुपये स्वामीजी को चढ़ा दिए, तो मुक्ति मिल जाएगी। यदि केवल चढ़ाओगे ही, सुनोगे नहीं; तो गुरू तक का ठिकाना नहीं लगेगा; तुम्हारा तो लगेगा ही नहीं।

एक तरफ तो सभी यह कहते हैं कि तुम विना गुरू के अन्धकार से नहीं छूट सकते। पर, दूसरी ओर इस बारे में भी सावधान रहना कि जो स्वयं गुरू नहीं है, जो गुरू स्वयं जागा हुआ नहीं है, वह तुम्हारा शोषण ही कर सकता है, तुम्हें जगा नहीं सकता। यदि तुम जागना चाहते हो, तो अब गुरुओं को भी छोड़ो। ऐसे गुरु जगाते नहीं हैं, वे तुम्हारा धन लूटते हैं। वे तुम्हें धोखे में रखते हैं। जहाँ गुरू के बिना तर नहीं सकते, वहाँ गुरुओं ने धोखा भी दिया है। गुरू ने शिष्य का अँगूठा काटा है। गुरू ने टोंटी में घुसकर दान देने में बाधा डाली है। आँख चाहे चली जाए, पर दान में बाधा अवश्य ही डालेंगे। गोस्वामीजी ने कहा है,—

'बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी।'

बलि ने भी ऐसे गुरू को छोड़ दिया था, जो कल्याण में बाधा डाल रहा था। जो गुरू किसी शिष्य के कहीं अन्यत्र जाकर कल्याण की बात सुनने में कहे कि क्यों जाते हो, तो समझ लेना कि मतलबी गुरू है। अभी से सावधान हो जाओ, यही अच्छा है। नहीं तो क्या मरने का दिन आ जाएगा, तब चेतोगे? यदि मरने के दिन यह

Digitization by American Academy of Indic Studies-AAIS(USA)

जान पाये कि कहाँ फँसे रहे, तो उससे क्या लाभ होगा ? पहले ही जान जाओ, तो भला हो जाएगा ।

गुरुओं के जाल से छूटना भी है और बिना गुरू के तर भी नहीं सकते । जाली नोटों से बचना भी है और बिना नोटों के काम भी नहीं चलना है । नोट जाली भी हैं और नोट असली भी हैं । असली नोटों से ही काम चलेगा, जाली तो बेकार हैं । धोखा खा जाओगे ।

जाली गुरू भी हैं । मैं यह नहीं कहता कि कौन जाली है ? जाली को समझ लेना, पहचान लेना । जो तुम्हें जगाने में मेहनत नहीं करता, सिर्फ दान-धर्म पर ही नब्बे प्रतिशत उपदेश देता है, तो बिना देखे ही समझ लो कि ठग है । समझ लेना कि गुरू बेईमान हैं ।

तुम जब जागोगे, तभी तुम्हारा कल्याण होगा । जब तुम्हारा कल्याण होगा, तो तुम आप ही दान दोगे । लेकिन, गुरू महाराज तो मरे जा रहे हैं लेने के लिए । वे लेने की भूमिका क्यों बनाते हैं ? इसलिए कि उन्हें तुम्हारे कल्याण से कुछ मतलब नहीं है; उन्हें तो तुम्हारे पैसे से मतलब है । जिसका तुम भला करोगे, जिसको तुम दुनियाँ से तार दोगे, क्या वह तुम्हारा आभार नहीं मानेगा ? वह तुम्हें देगा नहीं ? तुम्हें इतना भी विश्वास नहीं है ? इसलिए, माँगने की कथा नहीं, कल्याण की कथा होनी चाहिए ।

मैं तुम से फिर कह रहा हूँ कि जागो ।

'जागे सो पावे, सोवे सो खोवे ।'

स्वप्नों का साक्षी, इन्द्रिय रूप देखकर, देह रूप देखकर, दृष्टा था । देह मानकर जब साक्षी देखता है, तो जगत् है । जब साक्षी होकर साक्षी देखता है; जब तुम साक्षी होकर देखते हो; अधिष्ठान होकर देखते हो; तो स्वप्न कुछ नहीं है, तुम्हीं अकेले हो । इसलिए, तुम अब भी साक्षी हो । सोचो जरा ! 'साक्षी' इन्द्रियाँ और देह बनकर देखता है । तू 'चेतन', देह और इन्द्रियों के द्वारा जब देखता है, तब

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तू आदमी है। तू दृष्टा है, यह जगत् है; लेकिन, तू देह बनकर न देख, इन्द्रियाँ बनकर न देख, मन बनकर न देख। तू साक्षी बनकर देख।

अभी तू साक्षी है। तू केवल चैतन्य है। आँख बनी रहे, कान बने रहें। पर, तू आँख में मिलकर क्यों देखता है; तू कान में मिलकर क्यों सुनता है ? तू तो अपनी जगह 'साक्षी' बन। अपने को तू साक्षी मात्र जान और केवल साक्षी होकर आने दे, स्वप्न को प्रकाशने दे।

चैतन्य कहाँ नहीं है ? चैतन्य के बिना ये पहाड़ और यह आकाश कुछ नहीं है। स्वप्न का देखा जाना, तुम जागकर स्मरण करते हो। जो स्वप्न में देखा था, उस सबकी याद आती है। सबमें तुम मिलते हो। आँख बन्द करो और जितना जगत् तुमने देखा या जाना है, साक्षी होकर देखो। साक्षी होकर आकाश और धरती को देखो। साक्षी होकर समस्त संसार को जानो। स्वप्न, इन्द्रियों से देखा था। स्वप्न को आँखों से देखा था; पर, जागे तब पता पड़ा कि सब साक्षी ने देखा था।

अभी तक तुम जगत् को इन्द्रियों से देख रहे हो। अब इन्द्रियों को परे हटा दो। तुम ही साक्षी हो। आँखें बन्द कर लो और कानों में रुई लगा लो। अब देखो कि सब क्या है ? सबकी याद करो। आपने पेड़ देखा था और पहाड़ भी देखा था। अपने से पूछो कि किसने देखा था ? आँखें बन्द कर लो और सिर्फ यह देखो कि बाहर किसने देखा था ? किसको ज्ञान हुआ था बाहर का ? किसको प्रतीति हुई थी जगत् की ? किसको प्रतीति हुई थी शरीर की और संसार की ? जिस साक्षी को सबकी प्रतीति हुई थी, यह साक्षी वही है और वही साक्षी यह है। इस और उस साक्षी में जरा भी भेद नहीं है।

यह संसार और स्वप्न का संसार, दोनों ही कल्पित हैं। इसलिए, ये दोनों ही मिथ्या हैं। दोनों ही स्वप्न हैं। सत्य दोनों में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

एक ही है। दोनों स्वप्न, एक जैसे झूठे हैं और सत्य, दोनों में एक जैसा है। उस समय का और इस समय का सत्य एक है। उस समय का और इस समय का स्वप्न भी एक है। इसलिए, यह भी स्वप्न है और वह भी स्वप्न है। अष्टाबक्र गीता में इसी की चर्चा है। इस बात के लिए चिन्तन करो; जागने की कोशिश करो। यदि तुम जाग सकोगे, तो ही यह जानोगे।

धन्य हैं वे लोग, जो इस चिन्तन में समय लगाते हैं। गंगा नहाना आसान है। यदि तुम्हारे पालतू कुत्ता हो, तो ले आना। वह भी गंगा नहा लेगा। गंगा नहाना, कोई कठिन काम नहीं है। लेकिन, क्या उसके अन्दर गंगा का भाव होगा ? नहीं होगा। तुम्हारे अन्दर गंगा का भाव है। छोटे बच्चे को तुम कहो कि स्वामीजी के पैर छुओ। वह पैर छू लेगा। पर, स्वामीजी की महिमा, स्वामीजी की विशेषता, स्वामीजी की खूबी और स्वामी जी की ज्ञान-निष्ठा से उसे कोई मतलब नहीं होगा।

कई लोग, बच्चों में अच्छे संस्कार डालने के लिए ऐसा करते हैं। वह बुरा नहीं है। अच्छे संस्कार डालना अच्छी बात है। लेकिन, जगना तो सयानों का कठिन है, बालक को क्या जगाओगे ? आत्मा का ज्ञान होना ही ध्येय है। उसी को तुम चैतन्य, 'मैं' जानो। उसी को 'मैं' जानो। जो तब था, अब नहीं है; वह भी स्वप्न और जो अब है, तब नहीं था; वह भी स्वप्न। जो स्वप्न में और अब जाग्रत में, दोनों में ही रहा है, वही साक्षी है। उस समय का और इस समय का साक्षी एक ही है। एक तथ्य और जोड़ दो। उस समय वाले को और इस समय वाले को, जो दोनों में है, उसी को 'मैं' जानो। जो बदल गया हो, उसे 'मैं' मत जानो।

मैं आपको सोने की पहचान करने का ढंग बतलाता हूँ। हमने सोने की एक नथनी बनवाई। नथनी को तोड़ दिया और अँगूठी बनवा ली। तो उस समय जो सत्य था और इस समय जो सत्य है,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वह तो सोना ही है। जो उस समय सत्य था और इस समय नहीं है, वह है नथनी। जो इस समय सत्य है, उस समय नहीं था; वह है अंगूठी। जो इस समय सत्य है, उस समय नहीं था; वह गहना है। जो तब सत्य था, अब नहीं है; वह भी गहना है। और जो तब भी था और अब भी है, वह सोना है।

नथनी ही गहना बन गई थी और नथनी ही अँगूठी बन गई थी। नथनी खतम हो गई, तब अँगूठी बनी। क्या ये दोनों एक ही हैं? दोनों अलग-अलग हैं। इसी तरह, वह स्वप्न और यह स्वप्न दोनों एक नहीं हैं; एक जैसे तो हैं। मान लो नथनी तोड़कर फिर नथनी बना दें, तो क्या दूसरी नथनी वही होगी? नथनी तोड़ी और फिर नथनी बना दी, तो दोनों में यह वाली सच है कि वह वाली? सच क्या है? सच तो सोना ही है। एक समय पहली नथनी सच थी। फिर, दूसरी नथनी सच हो गई। लेकिन, दोनों स्थितियों में सोना ही सच है।

रात में जो स्वप्न देखा था, वह रात का स्वप्न और यह जाग्रत का स्वप्न है। यह उस समय न था; वह इस समय नहीं है और 'मैं' जो उस समय था, वही इस समय भी है। जो इस समय हो और जो उस समय भी हो, उतने ही अंश को सच मानो; बाकी को स्वप्न जानो। जैसे नथनी तोड़कर अँगूठी बनाई गई, तो अभी अँगूठी की बात मत करो। नथनी तोड़ने पर जो बचा है, वह क्या है और अँगूठी तोड़कर जो बचेगा, उसकी क्या पहचान है? वह दोनों स्थितियों में सोना ही है। ऐसे ही, जो स्वप्न टूट जाने पर इस समय बच गया और जो जाग्रत में भी बचा है, वह साक्षी ही है।

साक्षी कितना बड़ा है? कितना लम्बा-चौड़ा है? साक्षी कि[illegible] आकार का है? वह गोरा है या काला है; पीला है या लाल है? साक्षी ने स्वप्न में काला, पीला या लाल रंग देखा। ये रंग साक्षी-भाष्य हैं। साक्षी न पीला है, न लाल है। साक्षी-भाष्य ही छोटे-ब[illegible]

 Digitization by American Academy of Indic Studies - AAIS(USA)

हैं। क्या साधू का साक्षी बड़ा और गृहस्थ का साक्षी छोटा होता है ? बड़ा और छोटा तो साक्षी को मालूम पड़ता है। अच्छा और बुरा तो साक्षी को मालूम पड़ता है। साधु और असाधु तो साक्षी से ही मालूम पड़ता है। साक्षी न साधु होता है और न असाधु होता है। साक्षी न अच्छा होता है, न बुरा होता है। अच्छे-बुरे सबका भी वही साक्षी होता है। साक्षी में सब दिखता है। जो कुछ दिखता है, सब साक्षी-भाष्य है। साक्षी स्वयं प्रकाश है—

'स्वयं प्रकाश न सोवत जागत, न कहूँ गया न आया।
नहिं उत्पत्ति प्रलय नहिं सृष्टी, ईश्वर जीव न माया।'

हमने तो अपने गुरुओं से यह भी सुना था कि 'जगत् है जाग्रत का स्वप्ना'। इस बुद्धि का स्वप्न, उस बुद्धि का स्वप्न और साक्षी दोनों का एक। अभी बुद्धि नहीं जागी। एक स्वप्न तो छूटा; उसको तो बुद्धि जानने लगी स्वप्न। पर, बुद्धि यह नया स्वप्न देखने लगी। इसलिए, इस बुद्धि को भी हम जागी नहीं कहते; क्योंकि, जो बुद्धि दृश्य को सत्य देखे और साक्षी का विचार न करे, वह सोई हुई है। जगकर, लोगों ने साक्षी के बारे में नहीं सोचा; जगत् देखने में लग गए। साक्षी को जनाने की कोशिश चल रही है। पर, जागे आदमी, स्वप्न से जागे आदमी भी, साक्षी को नहीं जानते। जागकर, वे जगत् ही देखते हैं। एक स्वप्न से छूटे और दूसरा स्वप्न लद गया। इसलिए,—

'जगत हे जाग्रत का स्वप्ना, निरख सत्य स्वरूप अपना।
छोड़ अब दासोऽहम् जपना, शिवोऽहम् बोल जरा प्यारे॥

आजकल के शंकराचार्य कहते हैं कि शिवोऽहम् बोलने वाले नरक जाएँगे। अरे! शिवोऽहम् बोलने वाले नरक जाएँगे, तो आद्य गुरु शंकराचार्य जी कहाँ जाएँगे ? यदि वे नरक जाएँगे, तो उनकी गद्दी पर बैठे ये लोग कहाँ जाएँगे ? वे उनकी गद्दी के प्रेमी हैं; उनके ज्ञान के प्रेमी नहीं हैं। कई चेले गुरू के आश्रम के भूखे

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होते हैं; वे गुरू के ज्ञान की जरूरत नहीं समझते। जैसे कई चेले पैसे के भगत होते हैं, वैसे ही आजकल के गद्दीधारी, गद्दी के भूखे हैं; पर, शंकराचार्य जी के ज्ञान के विरोधी हैं। यदि शंकराचार्य जी की आत्मा इनकी साक्षी होगी, तो सोचती होगी कि ऐसे लोगों को गद्दी पर बिठाया ही क्यों गया है ?

तुमको इस बात से धक्का लगा होगा। परन्तु, मुझे जो सूचना मिली है, उसी के आधार पर कहता हूँ। मैं पूछता हूँ कि यह वेदान्त, जो संसार को जगाने वाला है; यह वेदान्त, जिससे आदमी शोक, मोह से जीते जी छूट जाता है; वह इन्हें नहीं जगा सका। दुनियाँ के बहुत से धर्म और हिन्दुओं के कुछ शास्त्र, मर जाने के बाद मोक्ष की बात करते हैं। मर जाने के बाद स्वर्ग जाने की बात करते हैं। वे नाना प्रकार के प्रलोभन देते हैं। लेकिन, अध्यात्मवाद और उपनिषद्‌वाद का सिद्धान्त यह बताता है कि आत्मवेत्ता जीते जी ही मुक्त हो जाता है।

मरने के बाद तो न गुरू की जरूरत है और न शास्त्र की ही जरूरत है। भगवान की प्रतीक्षा की भी जरूरत नहीं है कि वे आएँ और तुम्हें मुक्त करें। जब तुम्हारे प्राण निकलने लगें, तो गुरूजी आकर सच खण्ड में ले जाएँ। जो आदमी, जीते जी आत्मा को साक्षी रूप से अनुभव करता है, वह भला मरते समय किसी को पुकारेगा कि आ जाओ मेरे मोक्ष के लिए ? क्या गहना टूटते समय, सोना कहेगा कि उसे बचा लो ? यदि, कोई गहना तोड़ देगा, तो क्या सोना नहीं बचेगा ? तुम कौन हो ? यदि, तुम आत्म-चैतन्य हो, यदि तुम्हें यह अहसास हो गया है, तो ध्यान में भी तुम कुछ मत देखो, कुछ मत सोचो। न उजेला देखो और न अन्धेरा देखो। कुण्डलिनी भी मत देखो। ये कुछ भी नहीं है।

कुण्डलिनी को जाग्रत करने की प्रक्रिया है। उजाला देखने की प्रक्रिया है। भजन का आनन्द लेने की प्रक्रिया है। लेकिन, मैं तुम्हें

Digitization by American Academy of Indic Studies AAIS(USA)

बताता हूँ कि जो तुम मन से करते हो, सब झूठ है; जो साधन करते हो, सब झूठ है; जो ध्यान में लाते हो, सब झूठ है; जो बताया-सुनाया जाए; सब झूठ है। इसलिए, जाना-माना, देखा-किया, जो कुछ भी है, सब झूठ है। सत्य है, केवल साक्षी। सच था भी, है भी और रहेगा भी। यही मैं बराबर कह रहा हूँ। आदि सच, युगादि सच, है भी सच, कौन ?

'१ ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु।
अकालमूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥'

'आदि सचु, जुगादि सचु। है भी सचु नानक, होसी भी सचु ॥'

बिना गुरू के जपोगे, तो जपते रहो; कुछ होने वाला नहीं है। इसलिए, इस अध्यात्मविद्या को सुनो। □

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

निर्मान मोहा

कुछ इच्छाएँ आवश्यक होती हैं; जिनको हम छोड़ नहीं सकते। उनकी पूर्ति ही की जाती है। कुछ इच्छाएँ, जो हमारे मन में होती हैं, वे आवश्यकता से पैदा होती हैं। वे अपने-आप में, पहले से, स्वयं विद्यमान नहीं होतीं। इच्छाएँ होती नहीं हैं, वे पैदा होती हैं। जो इच्छाएँ पैदा होती हैं, वे आवश्यकता के कारण होती हैं और उनकी पूर्ति ही करनी पड़ती है। उनको छोड़ा नहीं जा सकता। जो इच्छाएँ छोड़ी नहीं जा सकतीं, जिन्हें कोई भी नहीं छोड़ पाता, वे ही आवश्यक हैं और उनकी पूर्ति सभी को करनी पड़ेगी; भले ही पद्धति कोई भी हो।

कुछ इच्छाएँ कभी भी पूरी नहीं की जा सकतीं। वे आवश्यक नहीं हैं; किन्तु, मन में होती हैं। कितना भी प्रयास करो, उन्हें पूरी न कर सकोगे। जैसे जीने की ही अभिलाषा है। जीने की इच्छा कितने दिन की है? पन्द्रह वर्ष की, बीस वर्ष की या सौ वर्ष की? क्या सौ वर्ष वाले मरना चाहते हैं? अन्दाज लगा लो। जो दो सौ वर्ष के हो जाते होंगे, क्या वे मरना चाहते होंगे? नहीं। यदि कोई सिद्ध बाबा पाँच सौ वर्ष का हो जाए तो? फिर तो वह मरना ही चाहता होगा? नहीं, वह भी नहीं मरना चाहेगा। यह जीने की इच्छा, कभी भी पूरी नहीं होती। कोई भी आदमी, अपने-आप के जीने की अभिलाषा को, पूर्णता के आधार पर पूरी नहीं कर पाएगा।

इसी तरह बड़े होने की अभिलाषा है। गरीब तो अमीर होना

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ही चाहेगा; क्या कोई ऐसा भी अमीर है, जो अब आगे अमीर नहीं होना चाहता ? ऐसे अमीर से, जिसने अमीरी की ओर की यात्रा पूरी कर ली हो, जरा हमें भी मिलवा देना। ऐसे अमीर का पता लगाना, जिसको अब आगे नहीं जाना है; जिसने चलना बन्द कर दिया है और जिसे चलने की अब जरूरत नहीं रही है।

आप हरिद्वार आए हैं, आपको अब इसके आगे नहीं जाना है। कई ऐसे लोग भी होंगे, जिन्हें आगे जाना होगा। वे बदरीनाथ, केदारनाथ और गंगोत्री आदि स्थानों तक जाएँगे। हमने देखा है कि जहाँ जाना होता है, वहाँ जाकर आप रुक जाते हैं। फिर, लौटते हैं; आगे नहीं जाते। कोई ससुराल जाता है; फिर घर आ जाता है। लोग जाते हैं, फिर लौटकर घर आ जाते हैं। लेकिन, अभी तक हमने अमीरी के मील नहीं गिन पाए। उसकी दूरी नहीं जान पाई कि कितनी है ?

यह तो हम सब कहते हैं कि हमें अमीर होना है। पर, अमीर किसे कहते हैं ? उसके पास कितना धन होना चाहिए ? क्या लखपती अमीर होते हैं ? क्या करोड़पती, अरबपती, पद्मपती अमीर होते हैं ? बोलो ? कितने धन वाला व्यक्ति अमीर होता है ? क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को जानते हैं, जो अमीर हो चुका हो और अमीरी के रास्ते पर अब न चल रहा हो ? आप यह बतलायें कि क्या आप उस रास्ते पर नहीं चल रहे हैं ? क्या आप बता सकते हैं कि यह रास्ता कहाँ पहुँचेगा ? यह ऐसा रास्ता है, जिस पर चलते सब हैं; लेकिन, मंजिल पर कोई नहीं पहुँचता। चले बिना रहा भी नहीं जाता और मंजिल पर पहुँच भी नहीं पा रहे हैं।

बड़े होने वाला रास्ता, ऐसा ही रास्ता है, जहाँ कोई भी नहीं पहुँच पाया। मण्डलेश्वर तो अब आगे नहीं बढ़ना चाहते होंगे ? वे तो अपने लक्ष्य तक पहुँच गये होंगे ? क्या उन्हें अब आगे नहीं जाना ? मिनिस्टर बन गये, तो क्या अब उसके आगे कोई और पद

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

नहीं है ? बड़े होने के रास्ते पर जो चला है, वह मूर्ख है। आज तक कोई भी मंजिल तक नहीं पहुँचा। सब बीच में ही हैं। दिन-रात चल रहे हैं; पर, हैं अभी बीच में ही। बाबा लोग भी तुम लोगों से कम थोड़े ही हैं। लगभग सभी लोग उसी रास्ते पर चल रहे हैं। सभी को आगे जाना है और बड़ा हो जाना है।

हमने देखा कि गरीब छोटा था। जब वह और आगे बढ़कर अमीर हुआ, तब भी वह छोटा ही रहा। वह पहले से जरूर बड़ा हो गया था; पर चलना उतना ही बाकी था। चले बहुत, पर चलना कितना बाकी है, इसका अन्दाज नहीं है ? क्योंकि, यदि मील निश्चित होते; तो अभी तक कुछ-न-कुछ दूरी कम हो गई होती; कुछ-न-कुछ हम लक्ष्य के नजदीक पहुँच गए होते। किन्तु, इतने दिन चलने पर भी, हम लक्ष्य के नजदीक जरा भी नहीं पहुँचे। हमारी अमीरी अभी और कितनी दूर है ? क्या उस सफर को हम कभी तय कर सकेंगे ? मंजिल इतनी दूर है कि हम दिन-रात बड़े ही हुए हैं, छोटे नहीं हुए। हम बराबर बड़े ही होते चले गए, ऐसा भी नहीं कह सकते। लाखों में एक ऐसा भी होगा, जो पीछे गया होगा।

पहले जब हम घर से निकले थे, तबसे हम बहुत आगे बढ़ गए हैं। लेकिन, आगे तो बहुत बढ़े, पर दूरी उतनी ही है। यह गणित, आप गणित में कहीं नहीं पाएँगे। पर, जीवन की दुनियाँ में यह गणित सत्य है कि बड़े होने के लिए कितना भी चलो, दूरी कम नहीं होगी। जीवन में अधूरापन तब जितना बाकी था, उतना ही अब भी बाकी है। बल्कि, कभी-कभी तो उलटा लगता है कि तब शायद अधूरापन कुछ कम था। पूर्णता की ओर जितना चले, अधूरापन और बढ़ गया। कमी बढ़ गई।

जो बेचारे अभी कुछ नहीं बने हैं, अभी मण्डलेश्वर भी नहीं हैं, उनको उतनी भूख नहीं है। मण्डलेश्वरों को तो

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

निकालने की भूख है; नारे लगाने की भूख है और बड़े कहलाने की भूख है। जितने ज्यादा नारे लगाएँ, समझो अहंकार है। चाहे वह शिवोऽहम् का नारा हो, चाहे सीताराम का नारा हो। ज्यादा नारे प्रदर्शन के लिए ही होते हैं कि हम भी कुछ हैं। लेकिन, वास्तव में वे हैं कुछ भी नहीं।

आप यदि जीवन को गहराई से देखेंगे, तो मालूम पड़ेगा कि जो इतनी उथल-पुथल है, इतना प्रदर्शन है, उसमें कहीं-न-कहीं हीनता की भावना ही है। बिना हीनता के इतना प्रदर्शन कैसे? पूर्णता और प्रदर्शन, यह कभी सम्भव नहीं है। यह कहावत पूर्णतया सत्य है,—

'अधजल गगरी छलकत जाए।'

आधी भरी गगरी छलकती है। जब पूरी भर जाती है, तब जल्दी समझ में ही नहीं आएगा कि भरी है। आधी भरी तो नजर आएगी। आधी तो छलकेगी, जैसे कि उसमें पानी बहुत है। आधी भरी गगरी में पानी छलकता है कि कोई देखे कि वह भरी है और जो गगरी भरी है, वह दिखाती भी नहीं कि वह भरी है।

जीवन का सत्य यह है कि जो पूर्णता में गया, उसका प्रदर्शन मिट गया और जो जीवन में जितना ही अधूरा है, उसके जीवन में प्रदर्शन उतना ही ज्यादा है। प्रदर्शन चाहे पैसे का हो, चाहे पद का और चाहे विद्या का; यह समझ लो कि वह अधूरेपन का ही द्योतक है। ज्यादा विद्वता दिखाने वाले लोग भी, वास्तव में विद्वान् नहीं होते। प्रदर्शन इस बात का सबूत है कि कहीं-न-कहीं हीन भावना है, ग्रन्थि है, अहंकार है।

अहंकार कभी बड़ा नहीं होता। अहंकार किसी से बड़ा हो सकता है। पर, वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, किसी-न-किसी से तो छोटा ही रहेगा। अहंकार कहते ही उसे हैं, जो कभी बड़ा होता ही नहीं; हमेशा कहीं-न-कहीं छोटा ही होता है। इसीलिए, अहंकार

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कभी चैन नहीं लेता; क्योंकि, वह कहीं-न-कहीं छोटापन देखता है। वह फिर बढ़ने की कोशिश में लग जाता है। वह बड़ा होने की कोशिश में ही लगा रहता है; क्योंकि, अहंकार का मतलब ही यह है कि जो कभी पूरा न हो। अहंकार और पूर्णता, दोनों कभी इकट्ठे नहीं रह सकते।

जब कोई व्यक्ति अविद्या और अज्ञान से मुक्त हो जाता है, तो उसके लिए कुछ होना बाकी नहीं रहता। ऐसा व्यक्ति निरहंकारी होता है। भले ही वेदान्त की भाषा में न समझो, इसे तुम सहज जीवन की भाषा में ही समझो कि जीवन का अधूरापन उन कामनाओं से है; जिनकी कि पूर्ति नहीं होती। जीवन दुःख से अधूरा नहीं होता, जीवन उनसे कभी अधूरा नहीं होता, जिनकी कि पूर्ति की जा सकती है। रोटी की कमी से जीवन अधूरा नहीं होता। रोटी की कामना तो आम आदमी में भी होती है; क्योंकि, वह आवश्यक है। रोटी खा लेने से वह कामना पूरी भी हो जाती है। लेकिन, कुछ इच्छाएँ ऐसी हैं, जो खाने से पूरी नहीं होतीं। उनकी भूख बढ़ती ही जाती है।

खाने से जो भूख बढ़े, वह है कामना और खाने से जो निवृत्त हो जाए, वह है आवश्यकता। खाने के बाद जो ना कर दे, वह है जरूरत और जो कभी ना न करे, वह है कामना। अभी जी-भर कर मेरी इज्जत कर दो, जी-भर के मेरा पेट भर दो; पर, मेरे से ज्यादा यदि पड़ोसी की इज्जत कर दोगे, तो मेरी बेइज्जती हो जाएगी। तुम्हें पेट भर खिला दें, फिर किसी और को कितना भी खिलाएँ; तो आपको बुरा नहीं लगेगा। आपने जरूरत भर का पानी पी लिया, फिर कोई कितना भी पीए, तुम्हें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। पर, मान कितना भी तुम्हें दे दें; यदि, कल पड़ोसी को पहले दे दिया, तो गड़बड़ हो जाएगी। आज तुम्हारे आश्रम को दान दे दिया, ठीक है। साधारण-सी बात है। लेकिन, पड़ोसी को

 Digitization by American Academy of Indic Studies - AAIS(USA)

दस हजार दे आओ और मुझे पाँच हजार ही दो, तो मुझे तकलीफ हो जाएगी; क्योंकि, कामना का पेट नहीं भरता। कामना उसे ही कहते हैं, जिसका कि पेट आज तक भर ही नहीं पाया।

भगवान् ने कहा है,—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥

काम बैरी है। वह बहुत खाने वाला है। वह महा अशना है। भगवान् ने कहा है कि वह इतना खाता है कि उसे कितना भी खिलाओ, उसका पेट कभी भरता ही नहीं। गोस्वामीजी ने कहा है कि,—

'बुझै कि काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घी ते।'

क्या तुम घी डालकर आग को बुझा सकते हो ? आग में जितना ही घी डालते जाओगे, उतनी ही वह और बढ़ती जाएगी। आग को खुराक देकर नहीं बुझाया जा सकता। आग को तो खुराक न देकर ही बुझाया जा सकता है।

कामना उसे कहते हैं, जिसकी कि पूर्ति से बढ़ती हो और आवश्यकता उसे कहते हैं, जिसकी कि पूर्ति से घटती हो। जिसकी पूर्ति करने से भी जो बढ़े, वह है कामना और जिसकी पूर्ति करने पर जो घटे, वह है आवश्यकता। गोस्वामीजी कहते हैं,—

'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।'

लाभ से लोभ बढ़ता है; जबकि लाभ से लोभ खतम होना चाहिए। लाभ हो गया, बात खतम। खा लेने के बाद खाने की इच्छा जाती है कि बढ़ती है ? जाती है। खा लेने के बाद, खाने की इच्छा मिट जानी चाहिए। पर लाभ के बाद, लोभ घटने के बजाय बढ़ता है। इसीलिए, उसका नाम लोभ है; आवश्यकता नहीं।

जरूरतमन्द को जरूरत की चीज मिल जाने पर, इच्छा खतम हो जाती है। गरीब आदमी की शादी है। यदि उसे जरूरत का मिल जाए, तो इच्छा खतम। पर सेठों जितना दरिद्र इस धरती

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पर है कोई ? तिजोरियों में जगह नहीं है; पर, दिमाग खाली है। घर पर सामान रखने की जगह नहीं है; पर, दिमाग में इतनी जगह है कि अभी दुनियाँ समा जाए, तब भी खाली रहेगा। इसीलिए, ईसा ने कहा था कि धनी आदमी भगवान् के दरबार तक नहीं पहुँच सकता। वह पूर्णता के साम्राज्य को प्राप्त नहीं कर सकता। चाहे सुई के छेद में से हाथी निकल जाए; किन्तु, धन का लोभी आदमी, पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। लोभी दरिद्र ही बना रहेगा। अधिकांश लोगों को लोभ ही दरिद्र बनाए हुए है।

मैं फिर कह रहा हूँ कि कहीं जरूरत को बुरा मत समझ लेना। कल से दुकान मत छोड़ देना। मैंने पहले कहा है कि आवश्यकता उसे कहते हैं, जो पूरी हो जाए और लोभ उसे कहते हैं, जो कभी पूरा न हो। जो धन पाके पूरा न हो; जो पद पाके पूरा न हो; उसी को मान कहते हैं। मान कितना भी मिल जाए, तृप्ति नहीं होती।

यश एक अलग चीज है। यश बुरा नहीं है। आप अच्छा काम करेंगे, तो यश मिलेगा ही। इसीलिए, भगवान् शंकराचार्य ने यश को बुरा नहीं कहा है और अपयश को मृत्यु कहा है। अच्छा कर्म करने वाले को ही यश मिलता है। किन्तु, मान का भूखा व्यक्ति यश के लिए सब कुछ नहीं करता; वह तो मान के लिए ही दिन-रात काम करता है। सब करके भी उसके मान की पूर्ति नहीं होती। वह मान की पूर्ति के लिए दान, त्याग, तप और यज्ञ करता है। वह मान के लिए ही कुछ-न-कुछ करता रहता है। ऐसा आदमी मान से कभी तृप्त नहीं होगा; वह अतृप्त ही रहेगा।

मान पाने की इच्छा धीरे-धीरे इतनी प्रबल होती जाती है कि व्यक्ति सदैव ही अपने को असन्तुष्ट अनुभव करता रहता है। उसे लाखों व्यक्ति अपने से आगे दिखते रहते हैं। लेकिन, निरभिमानी आदमी जहाँ भी खड़ा है, वहाँ उसके आगे कोई नहीं है। निरभिमानी व्यक्ति जहाँ है, उससे आगे कोई नहीं है। इसलिए, तुम जहाँ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

खड़े हो, वहाँ सन्त हो सकते हो; तुम्हें आगे चलने की जरूरत नहीं है। निर्धन धनवान् बनेगा, तब लोभ जाएगा ? साधारण आदमी पद प्राप्त करेगा, तब वह निर्मान होगा ? जो जहाँ खड़ा है, वहाँ ही निर्मान हो सकता है। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है,—

'निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥'

मैं गीता के जिस श्लोक पर ध्यान देता हूँ, वही श्लोक मुझे अपने-आप में पूरा लगता है। उपर्युक्त श्लोक भी अपने-आप में पूरा है। अगले श्लोकों की कोई जरूरत नहीं है।

'निर्मानमोहा' जो निर्मान है। जिसके अन्तःकरण में मान का लक्ष्य नहीं है, मान का भूत नहीं है। जो मान के लिए मरता नहीं है। यह नहीं कि उसका कोई मान ही नहीं है। हो उसका मान, लेकिन, उसे मान की आवश्यकता नहीं है। वह मान के लिए नहीं जीता। उसके दिमाग में मान के लिए कर्म नहीं है। उसका कोई भी कर्म मान से प्रेरित नहीं है। उसका कर्म या तो आवश्यकता से प्रेरित है या स्वभाव से। इसलिए, 'निर्मानमोहा' है।

'जितसंगदोषा' जिसने आसक्तिरूपी दोष को जीत लिया है। जिसकी इन्द्रियाँ विषय के शब्द से रहित हैं। 'अध्यात्मनित्या' जो सतत अध्यात्म वाला है, आत्मा वाला है, अध्यात्मयोग वाला है। जो आत्मयोग वाला, चैतन्य साक्षी का अनुभव वाला है अर्थात् अपने-आप में असंग रहता है। अब 'विनिवृत्तकामा', जिसकी कामना अच्छी प्रकार से नष्ट हो गई है। वह सभी काम से निवृत्त है। कौन से काम ? वे काम, जिनकी लोग पूर्ति नहीं कर पाते। अब वे काम उसके नहीं रहे।

इस बात को फिर समझ लो। कहीं तुम किसी बाबा को रोटी खाते देखकर यह मत सोचने लगना कि उसकी इच्छाएँ निवृत्त नहीं हुई हैं। जब किसी कामना की निवृत्ति की बात सुनो, तब एक बात

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ध्यान में रखो। 'विनिवृत्तकामाः', ऐसा व्यक्ति, जिसकी सभी कामनाएँ अच्छी तरह से निवृत्त हो गई हैं। जो इच्छाएँ कोई कभी पूरी कर ही नहीं सकता, उसकी वे इच्छाएँ भी निवृत्त हो गई हैं। उसके जीवन की यह अभिलाषा कि वह मरे नहीं या वह छोटा न हो जाए, अब नहीं रही है। इन अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए आदमी सतत प्रयत्न करता रहता है।

जिन्दगी में आदमी की बुद्धि, आदमी की शक्ति जितनी अपने से बड़ा होने में लगी है, उतनी आत्मा में नहीं लगी है। तुम श्रम कहाँ करते हो ? भले ही तुम यहाँ सत्संग में बैठ जाओ, पर यहाँ भी तुम्हारा मन टैण्टों की तुलना करेगा, कमरों की तुलना करेगा, बिस्तरों की तुलना करेगा, वह सदा मान पर ही खड़ा रहता है। वह निर्मान नहीं होता; 'अध्यात्मनित्या' नहीं होता; कामनारहित नहीं होता। दृष्टि गुजारे की नहीं है; दृष्टि मान की है। भोजन आगे-पीछे करने में, मण्डली के आगे-पीछे चलने में, शाही के आगे-पीछे निकलने में मान का प्रश्न ही बाधक है। दूसरा अखाड़ा पहले निकाल दें, तो उपद्रव हो जाता है। यदि छोटी मण्डली आगे आ जाए, तो बड़ी मण्डली भिक्षा ही नहीं लेगी। मान का बड़ा चक्कर है।

आप भी कभी अपने सम्बन्ध में सोच के देखिए। किसी के ब्याह में जाते हो, तो उसकी जरूरत नहीं देखते। ब्याह में उसकी जरूरत की पूर्ति करने के लिए जाना चाहिए था; लेकिन, तुम गए थे, अपने मान की पूर्ति करने के लिए। कभी विचार करके देखोगे तो पाओगे कि मान आगे है, नाक आगे है। यह काम निष्काम तो नहीं हुआ।

आगे कहा गया है **'द्वन्द्वैर्विमुक्तः'**, वह द्वन्द्व से मुक्त है। द्वन्द्व क्या है ? सुख-दुःख, हानि-लाभ, जन्म-मरण, जय-पराजय और अच्छा-बुरा, ये सब द्वन्द्व हैं। आध्यात्मनित्य ज्ञानी निर्द्वन्द्व है अर्थात्

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

जन्म भी उसका नहीं, मृत्यु भी उसकी नहीं। जन्म और मृत्यु दोनों से ही उसका कोई प्रयोजन नहीं है। लाभ और हानि से भी उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

जीवन में जो भी द्वन्द्व हैं, वे सब स्वरूप के अज्ञान से हैं। जैसे बनना और मिटना है। बनना और मिटना अस्तित्व में ही रहते हैं। पर अस्तित्व बनता है कि मिटता है? अस्तित्व निर्द्वन्द्व है; अस्तित्व का ज्ञाता निर्द्वन्द्व है। भगवान् निर्द्वन्द्व हैं; भगवान् का भक्त निर्द्वन्द्व है। सत्य निर्द्वन्द्व है। सत्य में कुछ बने, कुछ मिटे; सत्य को कोई फर्क नहीं पड़ता। जो सत्यनिष्ठ हैं; जिनकी दृष्टि सत्य में है; वे ही निर्द्वन्द्व हैं।

'अमूढ़ा', जो मूढ़ नहीं है; मोहित नहीं है; भ्रमित नहीं है। जो साक्षी में, आत्मस्वरूप में जाग्रत है। वह लाभ-हानि को पार कर गया है। तुम तो ध्यान में भी द्वन्द्व में ही फँसे रहते हो। मन लगता है, नहीं लगता है। यह अच्छा है, वह बुरा है। यह नहीं होना चाहिए था; यह होना चाहिए था। तुम तो तुरन्त चुनाव करते हो और द्वन्द्व खड़ा कर लेते हो। निर्द्वन्द्व तो तुम ध्यान में भी नहीं होते। फिर, और कब होओगे?

मैं रोज कहता हूँ कि ध्यान की विधि ही है निर्द्वन्द्व होना। द्वन्द्व की दोनों बातों में से किसी से भी मतलब न रखो। एकाग्रता और चंचलता छोड़ो; संयोग और वियोग छोड़ो; लाभ और हानि भी छोड़ दो। साधन और असाधन की कल्पना भी छोड़ दो। केवल मात्र साक्षी; केवल साक्षी रहो।

जो कुछ है, उन दोनों में से किसी से भी आपका कोई वास्ता नहीं है। आप निर्द्वन्द्व हैं। यदि मतलब है, तो द्वन्द्व है। सुख पकड़ोगे, तो दुःख के आने को डरोगे। सुख पकड़ोगे, तो सुख के जाने को डरोगे। रात को महत्त्व दोगे, तो दिन से डरोगे और दिन से प्यार करोगे, तो रात से डरोगे। दिन-रात, दिन-रात हैं। केवल साक्षी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हो जाओ। किसी भी वृत्ति के होने में, तुम्हारे अन्दर अच्छे-बुरे या लाभ-हानि का कोई भाव ही न हो; जैसेकि तुम द्वन्द्व को ही पार कर गए हो। तुम द्वन्द्व से असंग हो गए हो, अनासक्त हो गए हो।

मन में जब भी कभी द्वन्द्व आएगा, तो उसका उलटा, ख्याल में अवश्य ही आएगा। द्वन्द्व सदा ही पकड़े रहता है। सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय, अच्छा-बुरा और संयोग-वियोग को द्वन्द्व पकड़े ही रहता है। लेकिन, द्वन्द्व का साक्षी, द्वन्द्व का दृष्टा, द्वन्द्व का आश्रय निर्द्वन्द्व है। द्वन्द्व कल्पित है, सत्य निर्द्वन्द्व है। द्वन्द्व बनावटी है, आप निर्द्वन्द्व हैं। आप चैतन्य हैं और निर्द्वन्द्व हैं। आप साक्षी हैं, निर्द्वन्द्व हैं। निर्गुण-सगुण, आकार-निराकार और दृश्य-अदृश्य सब द्वन्द्व में है; केवल तुम ही निर्द्वन्द्व हो। लेकिन, तुम फिर भी निर्द्वन्द्व होना चाहते हो। हम कहते हैं कि तुम तो निर्द्वन्द्व हो ही; पर, तुम जो हो, उसका तुम्हीं को पता नहीं है। गड़बड़ तो यही है। जो तुम हो, उसको जानते नहीं और जो तुम नहीं हो, उसको तुम 'मैं' मानते हो। तुम इस द्वन्द्व में ही पड़े हुए हो।

ध्यान क्या है ? निर्द्वन्द्वावस्था ही ध्यान है। भीतर कोई भी चुनाव नहीं है। न कोई द्वन्द्व है और ना ही कोई ख्याल है। यही साक्षीपना है। यह तो जब आप ध्यान करेंगे, तभी धीरे-धीरे समझ में आएगा। यह ऐसे ही समझ में नहीं आएगा। प्रवचनों से जो समझते हो, वह टिकता नहीं है। इसलिए, प्रवचन सुनकर ध्यान करो और ध्यान करके प्रवचन सुनो। जो ध्यान करते हैं, वे प्रवचन सुनें और जो प्रवचन सुनते हैं, वे ध्यान करें। जो लोग घर पर घण्टे, आधा घण्टे ध्यान करते हैं; जो अपनी मनोवृत्तियों को ठीक से जानने लग गए हैं; वे फिर वेदान्त सुनें, तो जो कुछ उलझन रह गई होगी, वह भी सुलझ जाएगी।

ध्यान और वेदान्त एक-दूसरे के पूरक हैं। जो केवल सुनते हैं; कभी अन्तर्मुख होकर ध्यान नहीं करते; उनको सुनने में तो मजा

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

आएगा, पर निष्ठा मुश्किल से बनेगी। यदि निष्ठा बनेगी भी, तो वह चिल्लानेवाली होगी। वह अभिमान की द्योतक होगी। वह एक उच्छृङ्खलता सी लगेगी; क्योंकि, उसके जीवन में विवेक का उदय नहीं हुआ है। वहाँ केवल शब्द संग्रहीत हो गए हैं। इसलिए, सुनने वाले ध्यान जरूर करें और ध्यान करने वाले सुनें जरूर।

ध्यान करने वाले क्यों सुनें ? क्योंकि, ध्यान करने वालों को मनोदशा के अनुसार विचित्र अनुभूतियाँ होने लगती हैं। कभी प्रकाश, कभी गुरू, कभी गोल-गोल गुब्बारा जैसा और कभी शिव जैसा दिखता है। शिव प्रकाश का प्रतीक है। इसी तरह से अन्य अनुभव भी होते हैं। कभी साँप, कभी कुण्डलिनी, कभी दिव्यानन्द जैसी विलक्षण-विलक्षण अनुभूतियाँ होती हैं। साधक, अनुभूतियों को ही सत्य मानकर, उनमें ही टिक जाता है। इसलिए, जो भजन करते हैं, ध्यान करते हैं, उन्हें किसी ज्ञानी पुरुष का संग जरूर करना चाहिए। जिनको भजन और ध्यान किए बिना ही कोई अच्छे गुरू मिल गए हों, उनको सुनने के बाद उसका अभ्यास जरूर करना चाहिए। इसीलिए, हमने प्रातःकाल के कार्यक्रम में दोनों बातें रखने की कोशिश की है, जिससे साधकों की समस्याएँ कुछ बातें सुनकर सुलझें और कुछ ध्यान में सुलझें।

प्रारम्भ में तो ध्यान में कुछ भी मिलता नहीं मालूम पड़ेगा। पर, जब थोड़ी-सी सफलता मिलेगी; तब आपको स्पष्ट होगा कि ध्यान क्या है ? जितना वेदान्त तुम पढ़ते हो और सुनते हो; यदि ध्यान करोगे तो सारा अपरोक्ष होगा और सारे शास्त्र स्पष्ट हो जाएँगे। स्वरूप के विषय में, शास्त्र के विषय में, जो संशय हैं, विपर्यय हैं, वे सब नष्ट हो जाएँगे। कोई भी संशय शेष नहीं रहेगा। हमारे यहाँ संशय का नष्ट होना ही बहुत बड़ी साधना मानी जाती है। जिसके जीवन में कोई संशय ही न रहे, उसकी बहुत बड़ी और उच्च अनुभूति है। रामायण में एक जगह आया है,—

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता ।'

संशय का साँप मुझे खा चुका था, निगल चुका था। संशय का साँप सबको निगले हुए है। इसी तरह से, अन्य प्रसंग में भी एक श्लोक आता है,—

'भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः,
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।'

जो परब्रह्म परमात्मा का विज्ञाता है, उसके कर्मजाल कट जाते हैं। उसके मन की उलझनें, मन की ग्रन्थियाँ मिट जाती हैं और वह संशय-मुक्त हो जाता है। संशय तो तब हो, जब साक्षी अपरोक्ष न हो। स्वर्ग-नरक परोक्ष हैं। सुख-दुःख और संसार प्रत्यक्ष है। सुख-दुःख भी जाने गए हैं। दुनियाँ में कोई भी ऐसा नहीं है, जिसने सुख और दुःख जाना न हो या जिसे सुख-दुःख मालूम ही न पड़े हों। किसी ऐसे आदमी की खोज करो, जिसका सुख और दुःख से कभी परिचय ही न हुआ हो।

जीवन में सुख और दुःख तो प्रतिदिन मिलते ही रहते हैं। शायद आप लोगों को न मिलते हों ? हमें तो कई बार मिलते हैं। ये सुख-दुःख तो बड़ी जल्दी-जल्दी चक्कर लगाते हैं। दिन में कितनी ही बार शक्लें बदलते रहते हैं। जब ध्यान में बैठोगे, तब मालूम पड़ेगा कि एक-एक मिनट में क्या हो रहा है ? सेकण्डों में क्या हो रहा है ? हमने इन सबके दर्शन किए हैं। पर, इसी में साक्षी भी है, जगत् भी है। हम उसका विरोध नहीं करते। पर, सुख-दुःख, काम-क्रोध, लोभ और मोह भी हैं; जिनको हमने जाना है।

हम यह कहते हैं कि तुम किसी और का ध्यान कर सको या न कर सको, तुम्हें स्वयं को हुए सुख का, दुःख का, क्रोध का, स्वार्थ का, लोभ का और अहंकार का ही ज्ञान हो जाए और इनका ज्ञान करके अन्त में जानो कि तुम कौन हो ? जब तुम्हें क्रोध, लोभ, चिन्ता और भय जैसे मन के विकारों का ज्ञान हो जाए, तब यह

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

देखो कि इन सभी वृत्तियों को जो जान रहा है, प्रकाश रहा है, वह कौन है ? 'प्रकाश रहा है' ऐसा तुम ध्यान में रटो नहीं; प्रकाश रहे हो, ऐसा महसूस करो। तुम अपनी चित्त-वृत्तियों को, बिखरी हुई वृत्तियों को जानो और साथ-साथ यह भी ध्यान रखो कि इनसे तुम्हारा सम्बन्ध नहीं है। तुम निर्द्वन्द्व हो।

'निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।'

'आत्मवान्' अर्थात् जो आत्मा वाला है। शरीर वाले तो बहुत हैं; द्वन्द्व वाले भी बहुत हैं; लेकिन, निर्द्वन्द्व कम हैं।

योग-क्षेम वाले तो बहुत हैं; लेकिन, आत्मा वाले व्यक्ति नहीं मिलते। शरीर वाले तो बहुत मिलते हैं। आप भी शरीरवाले हैं। आप इन्द्रियों वाले हैं; मन वाले हैं; धन वाले हैं; बुद्धि वाले हैं; लेकिन, साक्षीभाव, आत्मभाव, चैतन्यभाव, ब्रह्मभाव वाले नहीं हैं। 'आत्मवान्' अर्थात् जो यह जानता है कि वह आत्मा है, चैतन्य है। आत्मवान् लोग नहीं मिलते।

आत्मवान् निर्योग होता है। वह क्षेम की कामना से रहित होता है। न उसे क्षेम चाहिए और न उसे योग चाहिए। पाई हुई चीज का ही योग है और उसी के बचाने का नाम क्षेम है। किन्तु, जो स्वरूपस्थ है; निर्द्वन्द है; उसका योग क्या और क्षेम क्या ?

किसी पाई हुई चीज को जब हम बचाते हैं और भगवत् कृपा से वह बच जाती है, तो क्षेम है। हम पाई हुई चीज को अपनाएँ, यह योग है। जब किसी से अपना योग नहीं; किसी से अपना वियोग नहीं; तो फिर योग क्या और क्षेम क्या ? कामना से योग और क्षेम की इच्छा होती है। भगवान् कृष्ण ने, गीता में बीच-बीच में ऐसे महामन्त्र सुना दिए हैं कि आत्मवान् योग-क्षेम से रहित हो जाता है अर्थात् उसको योग-क्षेम की कोई आकांक्षा ही नहीं रहती। क्या भगवान् का भक्त, भगवान् से कुछ चाहता है ? सब लोग कुछ न कुछ चाहते हैं; पर आत्मवान् अचाह हो जाता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अब मैं ध्यान की बात पर आ रहा हूँ। आप लोग कभी खाट पर लेटे-लेटे, कभी मसनद से टिके-टिके, कभी पूजाघर में एकान्त में बैठकर, कुछ क्षण के लिए अपनी चित्त-वृत्तियों को स्थिर किया करें। इस समय आप लोग आसन बदल करके, रीढ़ सीधी करके, शरीर को ढीला करके, आँखें बन्द कर लें। आपकी रीढ़ बिलकुल सीधी हो, जरा भी टेढ़ी न हो और शरीर बिलकुल ढीला हो, कड़ा न हो।

आप ध्यान किसी का मत करिए। सिर्फ इतना ही ख्याल करिए कि शरीर ढीला है कि नहीं? बराबर ध्यान करिए कि शरीर ढीला है। ध्यान के लिए इस जैसी सरल अन्य कोई विधि नहीं है। किसी का भी ध्यान करने की जरूरत नहीं है; लेकिन, शरीर को शिथिल कर दीजिए। शरीर-भर में जो चमड़ी है, उसे इतना शिथिल करिए कि जैसे ढीला कपड़ा पड़ा है। आपकी देह में चमड़ी, हड्डियों की देह में चमड़ी इस तरह पड़ी है, जैसे कि कोई ढीला चोला या ढीला वस्त्र है।

आप केवल यही ध्यान रखिए कि शरीर अब ढीला हो गया है, और ढीला हो गया है, बिलकुल ही ढीला हो गया है। इस बात का बराबर चिन्तन करिए कि आपने शरीर को ढीला कर दिया है। शरीर को और अधिक ढीला कर दिया है। आपने शरीर को इतना ढीला कर दिया है कि उसे अपने से संकल्परहित करके छोड़ दिया है। शरीर को कोई भी उठावे; कोई भी हिलावे; लेकिन, आपने तो उसे छोड़ दिया है।

जब इस शरीर को तुम छोड़ जाओगे, तो लोग उठाएँगे, लोग हिलाएँगे, लोग बिठाएँगे, लोग देखेंगे; पर, तुम कुछ न करोगे। अभी भी तुम पाँच मिनट के लिए शरीर को छोड़ दो; बिलकुल छोड़ दो; एकदम छोड़ दो। सिर्फ भीतर जागे-भर रहो। लेकिन, शरीर को कुछ मत कहो। शरीर को छोड़ दो; ढीला करके, शिथिल करके, निष्क्रिय करके छोड़ दो। रीढ़ सीधी रखते हुए सारी नसों को छोड़

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दो। शरीर-भर की एक-एक नस को छोड़ दो; जिससे वह आराम में हो जाए; तनावरहित हो जाए; चिन्ता-मुक्त हो जाए।

शरीर को कोई गिराए, तो गिर जाने दो। शरीर को कोई धक्का मारे, तो मार देने दो; पर, तुम शरीर को बिलकुल सक्रिय मत करना। तुमने उसे निष्क्रिय कर दिया है; मरे हुए की तरह छोड़ दिया है। जैसे तुम मरने पर शरीर छोड़ देते, ऐसे ही छोड़ दिया है; किन्तु, जीवित रहते हुए और जागते हुए छोड़ दिया है। ज्ञान के रहते हुए देह को छोड़ रखा है। शरीर को छोड़ रखा है, छोड़ रखा है। बस, ऐसे ही मन स्थिर करो, ध्यान स्थिर करो।

आपको शरीर से कुछ भी लेना-देना नहीं है। देह के किसी भी चक्र में मन को टिकाने की जरूरत नहीं है। ध्यान को टिकाने की जरूरत नहीं है। सारा शरीर ही तुम्हारे ध्यान की जगह है। सारी देह ही तुम्हारा घर है। इसलिए, कहीं कुछ हो रहा है, तो होने दो; तुम उसे मत रोको। आपने अपनी तरफ से तो शरीर पूरी तरह से छोड़ दिया है। अब श्वास चले, चाहे रुक जाए; शरीर बैठा रहे, चाहे गिर जाए; आप उसे सिर्फ देखते हैं; केवल देखते हैं।

शरीर निष्क्रिय रहे, केवल श्वास-भर चले। हाथ निष्क्रिय, पैर निष्क्रिय, सिर निष्क्रिय, दिमाग निष्क्रिय; केवल श्वास चले। श्वास तो तब भी चलती है, जब मन नहीं रहता। नींद आ जाती है, तब सोने में भी श्वास चलती रहती है। अब भी तुम लगभग ऐसे ही हो जाओ। अब श्वास में दखल न दो। शरीर में दखल न दो। जैसे, जब तुम सोए हुए होते हो, तो किसी चीज को नहीं रोकते। न तो तुम स्वप्नों को रोकते हो और न घुर्रकों को रोकते हो। शरीर के ऊपर मच्छर बैठने पर भी तुम कुछ नहीं करते। तुम सोए रहते हो। अब तुम सिर्फ जागे रहो; लेकिन, शरीर के लक्षण सोए हुए व्यक्ति के जैसे हो जाएँ। जैसे सोया हुआ व्यक्ति कुछ भी नहीं करता, ऐसे ही तुम जागे हुए कुछ न करो।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आपका दिमाग विश्राम करे। अपने मन से ऐसे हो जाओ, जैसे कुछ भी नहीं करना है। पहले शरीर से कर्म का त्याग करो। फिर, मन से कर्म का त्याग करो। फिर, बुद्धि से, ख्याल से और निर्णय से भी कर्म का त्याग कर दो। केवल चेतन, केवल साक्षी रहो। भीतर चेतनता के रहने को मना नहीं करते; बल्कि चेतनता तो पूरी रहे ही। भीतर होश तो पूरा रहे; पर दिमाग से ऐसे, जैसे कुछ करना ही नहीं है। यहाँ तक कि यदि शरीर गिरता हो, तो रोकना नहीं है। श्वास तेज हो जाए, तो धीमी नहीं करनी है। श्वास धीमी हो जाए, तो तेज नहीं करनी है। अपनी तरफ से नहीं करनी है, स्वत: हो जाए तो हो जाने दें।

श्वास स्वत: चलती है। श्वास दिन भर चलती है। तुम्हारा उससे, मन से कोई रिश्ता नहीं है। श्वास अपने आप चलती रहती है। श्वास तुम्हारे भरोसे नहीं चलती; दिमाग के बल पर भी नहीं चलती। श्वास गहरी नींद में भी चलती है। इसी तरह तुम ध्यान में हो जाओ। तुम शान्त हो जाओ। तुम अकर्त्ता हो जाओगे, तब भी श्वास चलेगी। .तुम अकर्त्ता होगे, तब भी भूख लगेगी। तुम अकर्त्ता होगे, तब भी वृत्तियाँ बनेंगी। तुम अकर्त्ता होगे, तब भी शरीर में कुछ-न-कुछ होगा।

अज्ञानी और अहंकारी व्यक्ति, अपने को कर्त्ता जानते हैं। ज्ञानी अपने को साक्षी और अकर्त्ता जानते हैं। फर्क इतना ही है। श्वास तो तब भी चलती है, जब तुम समझते हो कि तुम देह हो। जब तुम अपने को देह नहीं समझोगे, श्वास तब भी चलेगी। जब नींद में श्वास चलती है, तो ध्यान में क्यों नहीं चलेगी ? तुम दिमाग से जो यह सोचते हो कि तुम कर्त्ता हो; थोड़ी देर के लिए इस ख्याल से रहित हो जाओ कि तुम कर्त्ता हो।

तुम कुछ करते हो, यह विचार भर न रहे; बाकी सब-कुछ रहे। श्वास चलेगी। शरीर अपना काम करेगा। कान अपना काम

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

करेंगे। मन अपना काम करेगा और बुद्धि भी अपना काम करेगी। बुद्धि समझने का काम न छोड़े; मन संकल्प न छोड़े और इन्द्रियाँ अपना काम न छोड़ें। सब कोई अपना-अपना काम करे। तुम सिर्फ इतना निर्णय कर लो कि तुम साक्षी हो। इतना ही ध्यान रखो कि तुम कर्त्ता नहीं हो और तुम्हारी उपस्थिति में ही सबकुछ हो रहा है। करना नहीं छोड़ना है। इन्द्रियाँ अपना काम करती ही हैं। कान सुनने का काम बन्द न करें; पर, तुम साक्षी हो; श्रोता नहीं हो। मन संकल्प न छोड़े। बुद्धि प्रवचन समझेगी। समझ को छोड़ ही नहीं सकते। समझ अपना काम करेगी। वह समझेगी; किन्तु, तुम समझ के साक्षी रहोगे। संकल्प के साक्षी, क्रिया के साक्षी, सदा साक्षी ही रहोगे।

गीता का यह सबसे बड़ा सत्य है कि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि, सब अपना-अपना काम करती हैं; इनके काम छुड़ाना नहीं हैं; किन्तु, तुमको यह जानना है कि इनके करते हुए भी तुम अकर्त्ता हो। तुम असंग हो। तुम साक्षी हो, तुम निर्लेप और निरंजन हो। तुम जन्म-मरणरहित चैतन्य हो। वृत्तियाँ बदलती हैं; बुद्धि निर्णय करती है; इन्द्रियाँ अपना-अपना काम करती हैं। वे सुनने का, देखने का, सूँघने का और छूने का काम करती हैं। मन पदार्थों में जाता रहता है। कोई काम बन्द नहीं है। प्राण सतत अपना काम कर रहा है। वह नींद में भी कर रहा है। मूढ़ आदमी अहंकार के कारण अपने को कर्त्ता मानते हैं; पर, ज्ञानी आदमी अपने को अकर्त्ता जानते हैं। ज्ञानी अपने को कर्त्ता नहीं जानते, साक्षी जानते हैं। तुम भी अपने को साक्षी जानो। यही पुरुषार्थ है।

ऐसे विचार तो सभी के मन में उठते हैं कि मैं खाता हूँ, पीता हूँ, करता हूँ, सुनता हूँ, लेता हूँ, देता हूँ, दुखी हूँ और सुखी हूँ। किन्तु, मैं साक्षी भी हूँ, इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, ये दृश्य हैं, ये परिवर्तनशील हैं; ऐसे विचार कम लोगों के मन में उठते हैं। मैं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मन, बुद्धि, अहंकार नहीं हूँ। मैं साक्षी हूँ। मैं चेतन हूँ। मैं द्रष्टा हूँ।

आप केवल एक मिनट और शरीर को स्थिर और मन को शान्त रखें। शरीर के प्रति सजग रहें। प्रति सेकण्ड शरीर के प्रति ही सजग रहें। शरीर के अलावा कोई अन्य ख्याल न करें। शरीर पर किसी तरह का दबाव न डालें। जिसमें सुविधा हो, सहजता हो, वैसे ही शरीर को रखे रहें। कुछ मिनट शरीर का ध्यान रखें कि शरीर स्थिर हो गया है। तुम यह जान रहे हो कि शरीर स्थिर हो गया है। फिर, तुम यह जान रहे हो कि धीरे-धीरे श्वास श्वास चल रही है। फिर, तुम मन की हर हालत को जान रहे हो। ऐसा जानते-जानते साक्षी भाव में आत्माराम हो जाओगे। चैतन्यमात्र में रमने लग जाओगे। जगत् से असंगता आ जाएगी। तुम निर्द्वन्द्व और निश्चिन्त हो जाओगे।

भगवान् का सन्देश है कि निर्द्वन्द्व होकर अमूढ़ लोग, ज्ञानी लोग अव्यय पद को प्राप्त करते हैं। ज्ञानी, अक्षय, अविनाशी और अपरिवर्तनशील पद को प्राप्त करते हैं। अज्ञानी, विनाशी और परिवर्तनशील में ही अपने को उलझा हुआ अनुभव करते हैं। इसलिए,—

'गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।'

अमूढ़ अर्थात् जागे हुए ज्ञानी लोग, अव्यय पद को प्राप्त करते हैं। बाकी लोग विनाशी और व्यय वाले पद में ही उलझे रहते हैं।

आप लोग अपने स्वरूप ज्ञान को प्राप्त करते हुए भी, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्यों को समझें। आप अपने पारिवारिक कर्त्तव्यों को समझें। आप समाज में अपने उत्तरदायित्वों को निभाते हुए, मोक्ष की ओर बढ़ें। भगवान् ने कहा है,—

स्वकर्मणातमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।'

अपने कर्म से भगवान् की पूजा करते हुए, बहुत लोग सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। तुम भी ऐसा ही करो। □

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मन के पार

जब हम अन्तर्मुख होकर, आत्मा में युक्त होते हैं; तब हम संसार के दुखों से मुक्त अनुभव करते हैं। जब ध्यान का साधक, अपने मन से बाहर की दृष्ट चीजों को न पकड़कर, अपनी अन्तरात्मा में लीन हो जाता है; तो थका हुआ आदमी भी थकान से तुरन्त मुक्त हो जाता है। बाद में भी उसके लाभ हैं। जैसे आदमी के सो जाने पर, उसकी थकान की निवृत्ति हो जाती है और उसे स्वस्थता प्राप्त होती है; उससे भी अनन्तगुनी स्वस्थता ध्यान से प्राप्त होती है। अज्ञान के कारण, हमारी चेतना उससे होने वाले विशेष लाभ का अनुभव नहीं करती।

भौतिक दृष्टि से देखने पर भी, सुषुप्तावस्था में हमारी चेतना; बुद्धि सुप्त रहने के कारण, विशेष तरह से उस आनन्द का उतना अनुभव नहीं करती, जितना कि वह समाधि में या जाग्रतावस्था में कर सकती है। जब हम जाग्रतावस्था में उस विशेष सुख का अनुभव करते हैं और अन्य विषयों से मुक्त हो जाते हैं; तनाव से मुक्त हो जाते हैं; चिन्ताओं से मुक्त हो जाते हैं और विवेक भी भीतर जाग्रत रहता है, तो उस लाभ को पाकर हम बार-बार उसके पाने के लिए, मुक्त होने के लिए, एक मार्ग पा जाते हैं और जब चाहें तब उसका लाभ ले सकते हैं। सोने वाला व्यक्ति, जब चाहे तब, इतनी जल्दी लाभ प्राप्त नहीं कर सकता; लेकिन, ध्यान करने वाला व्यक्ति, जब चाहे तब, यह लाभ प्राप्त कर सकता है। थका हुआ, चिन्ताग्रस्त और व्यवहार से परेशान आदमी; यदि, उसका ध्यान

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सिद्ध है और उसे ध्यान का सही रूप स्पष्ट है; तो कुछ क्षणों में ही वह इतनी स्वस्थता प्राप्त कर लेगा, जैसे कि वह थका ही नहीं था।

जानते हो, थकान क्या है? थकान मन महसूस करता है। उदाहरणों से आप इसे आसानी से समझ सकेंगे। जैसे कि खाँसी आती है, और खाँसी आने से गले में खराशें बननी शुरू हो जाती हैं। कोई चूसने वाली चीज जरा सी ले लो। दवा नहीं, दवा तो वह है जो रोग को दूर करती है। पर, यह रोग को दूर नहीं करती। जरा-सा चूसने लगने से, मनोवृत्ति बदल जाती है और खाँसी बन्द हो जाती है। खराशें मन को मालूम पड़ती हैं। जब मन चूसने में लग जाता है, तो वह वृत्ति हट जाती है।

एक बालक किसी चीज को देखकर पाने के लिए रोता है। यदि प्यास और भूख की तरह उसको उसकी जरूरत होती, तो मन बदलने से वह न मिटती। उस चीज को देखकर उसका मन लालायित हुआ था। ताली बजाकर उसे दूसरी चीज दिखा दो। पहले देखी हुई चीज से उसका मन हट जाएगा। बस, वह उस चीज को भूल जाएगा। यह हाल बालक का ही नहीं है, हम सबका भी यही हाल है।

मन जिन चीजों से जुड़ जाता है, उनका महत्त्व मान करके वह सुख-दु:ख मानने लगता है। यदि, विवेकपूर्वक मन को समझाया जाए कि उनमें कुछ नहीं है, तो उनका मन पर पड़ने वाला प्रभाव बन्द हो जाएगा। तारा का पति बाली, युद्ध में भगवान् राम के द्वारा मारा गया था। तारा बहुत दुखी थी। उसे कोई औषधि नहीं दी गई थी; केवल, उसके विचारों को बदल दिया गया था। परिणामत:, जो दु:ख उसके ऊपर हावी था, वह नहीं रहा।

प्रत्येक व्यक्ति के मन पर संसार का प्रभाव पड़ता है। उस प्रभाव को खतम करने के लिए, आत्मा का साक्षी में लीन होना या स्मरण में लीन होना या जगत् से असंग होना आवश्यक है। इससे,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ज्यों-ज्यों आप जगत् से असंग होंगे; त्यों-त्यों आप साक्षीपन में स्थित होंगे और ज्यों-ज्यों आप साक्षीपन में स्थित होंगे, त्यों-त्यों आपकी जगत् से असंगतता बढ़ती जाएगी।

अब आपको जो उपाय सुगम लगे, वह करो। यदि आप असंगता का स्मरण करेंगे, तो साक्षीपन उभर आएगा। यदि चित्त में साक्षीपन उभारेंगे; अपनी अनुभूति में साक्षीपन का अनुभव करेंगे; तो अन्य चीजें अपने-आप ही प्रभावहीन हो जाएँगी। ध्यान में, स्वरूपबोध के पहले भी एक ऐसी अवस्था आती है। वह भी ध्यान देने लायक है। हमारा मन, देखे हुए दृश्य में भी एकाग्र हो जाता है। आँख बन्द किए-किए; प्रकाश में, गुरू में या अन्य किसी दृश्य में, मन एकाग्र हो जाता है। तब, मन एकाग्र होने के कारण, अन्य विचारों से मुक्त हो जाता है। मन के अन्य विचारों से मुक्त होने के कारण, एक बहुत ही सुखद अनुभूति होती है। आदमी राहत पाता है। किन्तु, जब कालान्तर में मन की वह स्थिति नहीं रहती, तो मन में विक्षेप उत्पन्न हो जाता है। मन के द्वारा स्थित होना आया था; मन से पार होना तो आया ही नहीं था। ऐसा साधक, आगे चलकर कभी-कभी विक्षिप्त भी हो जाता है और तब साधना का अगला चरण शुरू होता है।

हम किसी दृश्य में, चाहे दृश्य सूक्ष्म हो अथवा स्थूल, मन को एकाग्र न करके, मनोवृत्तियों को ही जानें और मनोवृत्तियों से असंग हों। हम मनोवृत्तियों के साक्षी हों अर्थात् साक्षीपन का स्मरण करें; तो मन में भोक्तापने की निवृत्ति हो जाती है। जैसे मन, धन का सुख भोगता है; सम्मान का सुख भोगता है; ऐसे ही वह अन्य सफलताओं का भी सुख भोगता है। ऐसे ही, ध्यान में मन आश्चर्य का सुख और चमत्कार का सुख भी भोगने लगता है और उन चमत्कारों के सुख के भोग से वह उसका गुलाम बन जाता है।

जब प्रकाश, नाद, दिव्य अनुभव, गुरु-दर्शन या भगवत्-दर्शन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आदि चमत्कारों का क्षय हो जाता है, तब साधक व्याकुल और बेचैन हो जाता है; क्योंकि, वह अभी मन के पार नहीं गया है। वह मन के द्वारा देखकर तृप्ति का अनुभव करता है। इसलिए, आखरी स्टेज तब आती है, जब साधक मनोवृत्तियों से असंग होकर अपने स्वरूप को जानता है और स्वरूप को अखण्ड, अनन्त, अद्वितीय ब्रह्म जानता है। यह जो अनुभूति है, वह सामान्य लोगों के ध्यान के बाद की है। जो लोग कई-कई घण्टे ध्यान में बैठ लेते हैं, वे लोग भी, कभी-कभी स्वरूप की सच्ची अनुभूति से वंचित रहते हैं। क्योंकि, ध्यान में, मन की स्थिति के अनुसार व्यक्ति को कभी-कभी विचित्र अनुभव होते हैं और उन अनुभवों के द्वारा व्यक्ति उन सुखों में आबद्ध हो जाता है। इसलिए,—

'नास्वादयेत् सुखं तत्र। निः संग प्रज्ञयाभवेत्।'

अर्थात् जब ध्यान में सुख मिले, तब सुख से भी राग न करे; सुख न भोगे और सुख का आस्वादन न करे। सामान्य जीव, दुःख से छूटकर, सुख ही पाना चाहता है। जैसे गरीब और भूखे को रोटी मिल जाए, तो ज्यादा खा जाता है; ऐसे ही कभी-कभी, नए साधक ज्यादा ध्यान करते हैं। जब वे अधिक देर तक ध्यान करते हैं, तो उनके गुरू भी उन्हें उठा देते हैं और ज्यादा देर तक ध्यान नहीं करने देते।

साधक, कभी-कभी उस ध्यान की विलयावस्था का आदी हो जाता है। वह जगत् के लिए उपयोगी भी बना रहे और उपभोग में भी न फँसे और वह मुक्त हो जाए, इसके लिए ध्यानी को स्वरूप ज्ञान की उपलब्धि आवश्यक है। ध्यान के साधक को; यदि, ज्ञान उपलब्ध न हो, तो वह ध्यान को प्रतिदिन अधिक-से-अधिक बढ़ाने के चक्कर में पड़ जाता है। जैसे भोगी, जवानी को लम्बा करना चाहता है; सैक्स को लम्बा करना चाहता है; ऐसे ही समाधि वाले, छत्तीस-छत्तीस कल्प तक या और भी लम्बे-लम्बे घण्टों तक, समाधि

Digitization by American Academy of Indic Studies: AAIS(USA)

को लम्बा करने के आदी हो जाते हैं। फिर, कई बार घर के काम रुके रहते हैं। रोटी और व्यवहार रुके रहते हैं; पर, समाधि में, आनन्द में लीन होने के लिए वह उत्सुक रहता है।

मेरा यहाँ समाधि से अर्थ उस समाधि से है, जिसमें किसी सूक्ष्म विषय को देखकर या विषय न सही, चित्त की एकाग्रता से ही सुख का अनुभव होता है। उस सुख के अनुभव को भी पार करना है, भले ही वह विशेष न हो; क्योंकि, विशेष का तो क्षय होता ही है। जो स्वरूप है, उसमें कुछ भी विशेष नहीं है; लेकिन, सामान्य सुख-स्वरूप ही है। उसी में स्थित रहना है। अन्य की कामना नहीं करनी है। इससे क्या होगा ? इससे सुख-भोग का आकर्षण मिटता है। यदि सुख-भोग का आकर्षण मन से नहीं मिटेगा, तो अधिक ध्यान करने वाले लोगों को भी मैंने रोते देखा है।

इस बात को गहराई से समझिए। यदि आप में से किसी एक भी साधक ने, ईमानदारी से ध्यान किया होगा, तो वह जानता होगा कि ध्यान के सुख के बाद बहुत दिन तक बड़ी बेचैनी रही होगी। स्वामी विवेकानन्दजी तक बहुत बेचैन रहे। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के द्वारा शक्तिपात् होने पर, आनन्दानुभूति के जाग्रत हो जाने के बाद; जब वह आनन्दानुभूति लुप्त हो गई, तब वे उसके लिए बड़े परेशान रहे। वे आत्महत्या तक करने को तैयार हो गए थे।

यह कोई एक विवेकानन्द का इतिहास नहीं है। ऐसा सैकड़ों ध्यान के साधकों के साथ हुआ है। मेरे ही नहीं, अन्य धर्मों से जुड़े हुए ध्यान के साधकों के साथ भी ऐसा हुआ है। कई तो ऐसे लोग भी हैं, जिनका बिना गुरू के भी ध्यान लगने लगा था और आनन्द मिलने लगा था। ऐसे लोगों की भी, कभी-कभी जब वह ध्यान की अवस्था नहीं रहती; तो वे उसके लिए तड़पते हैं, रोते हैं और

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गुरुओं के पास भटकते फिरते हैं कि कोई मार्ग मिल जाए।

एक घटना तो यहीं की है। अब से बारह साल पहले, यहीं कुम्भ में, भिण्ड-मुरैना का एक आदमी आया था। यहाँ घूमते हुए, क्षेत्र देखकर, साधुओं को खाते देखकर, उनके घूमने को देखकर, उनके नहाने को देखकर, उसके अन्दर नास्तिकता जन्मी। उसके मन में एक तड़प पैदा हुई कि क्या यही साधुओं का कुम्भ है? वह बड़ा दुखी, बेचैन और क्षुब्ध होकर, कई साधुओं से अण्ट-सण्ट बोला। अन्त में, किसी एक शख्स के पास जाकर वह पूछने लगा कि क्या आज एक भी ऐसा सन्त नहीं है, जिसके दर्शन करके, जिनसे बात करके, जिनके चरण स्पर्श करके, वह यहाँ से कुछ ऐसा लेकर जाए कि वह कह सके कि आज भी संसार में महान् सन्त हैं। ये रोटी बाँटना और खाना तो चलता ही रहेगा। वह यहाँ इसलिए नहीं आया।

सौभाग्य की बात कि जिस व्यक्ति से उसने यह सब कहा; उसकी जानकारी में कोई सन्त था। उसने उसे उनका पता बतला दिया। वह आदमी भी केवल बकवास करने वाला नहीं था। उसके अन्दर सच्ची तड़प थी। वह बताये हुए पते पर चल दिया। वहाँ काफी देर तक ढूँढ़ने के बाद उसे उन सन्त के दर्शन हुए। सन्त के उपदेश से उसे लाभ हुआ।

तीन-चार महीने बाद, एक सम्मेलन में जब मैं मुरैना गया, तो वहाँ वह आदमी मुझे रोता मिला। मैंने उससे पूछा कि क्यों रोते हो? तब उसने अपनी कथा बतलाई कि वह कुम्भ में गया था। वहाँ जाकर वह बहुत निराश हुआ था। कुम्भ में वह एक सन्त को मिला था, जिसने उसे एक अन्य सन्त से मिलने की प्रेरणा दी थी। वह वहाँ गया। सन्त को जब उसने नमस्कार किया, तो उन्होंने उससे बड़े प्रेम से पूछा कि वह क्यों आया है? उसने उनसे इतना

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उसे आँख बन्द कर लेने को कहा। सन्त के आदेशानुसार उस व्यक्ति ने आँखें बन्द कर लीं। फिर उसे डेढ़ घण्टे तक बाहर का कुछ भी पता नहीं रहा। वह दिव्य आनन्द में डूब गया। जब उसने डेढ़ घण्टे बाद आँखें खोलीं, तो देखा कि स्वामीजी चुपचाप बैठे हैं। उसने उनको फिर प्रणाम किया। उन्होंने उससे कहा कि बेटे अब जाओ। जव सन्त ने जाने की बात कही, तो उसने उनको नमस्कार करके एक बार यह पूछा कि महाराज! क्या यह अनुभव सदा उसके पास रहेगा? उन्होंने कहा कि इसका उत्तर वे अभी नहीं देंगे। वह व्यक्ति घर चला आया।

वहाँ से आने के बाद वह उस आनन्द के लिए तड़पता है। वह आनन्द उसे नहीं मिलता। वह बिलख-बिलखकर रोता था। मैंने उससे कहा कि कोई चिन्ता न करो; वैसी ही अनुभूति अभी तुम्हें फिर होगी। फिर मैंने उसे ध्यान में बिठाया। उसको वहुत लाभ हुआ। वह फिर आनन्द में जाने लगा। इसके बाद वह मुझे नहीं मिला। पता नहीं कि अब उसकी हालत क्या है?

यह घटना मैंने इसलिए बताई कि ऐसे भी सन्त हैं, जो आपके अन्दर शक्ति जाग्रत कर सकते हैं। किन्तु, अगला कदम भी ध्यान में रखो। यदि, आपकी ज्ञानी सन्त के प्रति पूरी निष्ठा नहीं है, तो ऐसा चमत्कार घटित होने के बाद भी आप आगे नहीं जा सकेंगे। आगे की यात्रा इससे भी जरा झीनी है। इसलिए, मैं आपको बतला दूँ कि ध्यान करने वाले साधक भी ब्रह्मनिष्ठ पुरुष का संग जरूर करें। इससे उनकी बुद्धि में स्पष्टता आएगी, निखार आएगा।

मैं अपने निजी अनुभव की बात आपको बताता हूँ। जब मैं ध्यान करने लगा, तो छः वर्ष तक मुझे ध्यान में इतना आनन्द आता था कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। किन्तु, धीरे-धीरे मन का आनन्द मिटता गया। जो मन के द्वारा आनन्द मिल रहा था, वह न मिलने लगा। मुझे भी लगा कि क्या मैं किसी सन्त को

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मिलूँ ? तब श्री गुरु महाराज का शरीर नहीं रहा था। मैंने सोचा कि किसी और से ही मिलूँ।

व्यक्ति को थोड़ा अहम् भी रहता ही है। व्यक्ति का अहम्, जल्दी ही किसी और से उसे मिलने नहीं देता। तब तक मैं भी गुरू बन चुका था। हजारों व्यक्ति मेरे शिष्य हो चुके थे। मेरा प्रचार भी काफी हो चुका था। तब, किसी और से मिलने में शर्म और संकोच रोड़ा बनता रहा। तुममें से भी ऐसे बहुत से लोग हैं, जो किसी खूँटे से बँध जाते हैं, तो फिर और जगह जाने में बेइज्जती समझते हैं। किन्तु, जीवन अपना है। बेइज्जती तो आज है, कल ये सब इज्जत चली जाएगी। यदि, कल्याण के रास्ते में तुमको ये बन्धन तोड़ने पड़ें, तो तोड़ सकते हो। चूँकि मेरा वेदान्त के बारे में थोड़ा बहुत अध्ययन और चिन्तन पहले ही से था; इसलिए, उस ध्यान के टूटने के बाद या बाधा आने के बाद स्वरूप के चिन्तन में गति हो गई। तब मैं अगली अवस्था का, उस तुरीय तत्त्व का विचार करने लगा, जिसके बारे में मैं आपको बतला रहा था।

एकाग्रता में दृष्टा होने में, मन मिला रहता है। जब मन मिला रहता है, तब 'मैं' दृष्टा होता है। मन के रहते, जब मन मेरे से मिला नहीं रहता; मन में ही रहते, जब अपने स्वरूप को जानता हूँ; तब मैं साक्षी अनुभव करता हूँ। जब मैं मन में लीन होता हूँ, तब मैं दृष्टा होता हूँ; लेकिन, जब मन मुझमें लीन होता है, तब मैं साक्षी होता हूँ। दोनों में फर्क है। मन से मिलकर के जानना और मन का प्रकाशक होना। साक्षी, मन का ही होता है; मन का ही प्रकाशक होता है। दृष्टा साक्षी साभास होकर के किसी विषय का होता है, तो भोक्तापने का अनुभव होता है।

भजन करने वालों को, ध्यान करने वालों को भी आनन्द आता है। लेकिन, भजनानन्द और ध्यानानन्द के बाद में स्वरूप बोध से जिस आनन्द का अनुभव होता है; उसमें अभय है और निश्चिन्तता

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है। उसमें पराधीनता नहीं है और विनष्ट होने का डर नहीं है। उसमें आनन्द के चले जाने की चिन्ता नहीं है। यह निश्चिन्तता स्वरूप बोध से ही आती है। इसीलिए, ऋषियों ने और उपनिषदों ने कर्म, उपासना और ज्ञान तीन काण्डों का वर्णन किया है। यह तो मैंने साधना की बात कही है।

अब हम देश की वर्तमान स्थिति पर विचार करेंगे। साधु-समाज ने कुछ प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किए हैं। हमें उनके लिए प्रयत्न करना है। हमें राजनीतिक षड्यन्त्रों से सावधान रहना होगा। गो-रक्षा होनी चाहिए और गो-वध बन्द होना चाहिए। अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के आधार पर देश, प्रान्त और जातियों में झगड़ा पैदा किया है। उसके कारण हम एक नहीं हो पा रहे हैं। न राष्ट्र ही एक होता दिखता है और न जनता ही एक होती दिखती है। इस तरह के विषम कानूनों को समाप्त करके सारे राष्ट्र और नागरिकों के लिए एक कानून होना चाहिए। न्याय में भी एकरूपता होनी चाहिए; जिससे हम सब एक हो सकें। हम लोभ के कारण भी जातियों में बँट रहे हैं। लोभ के कारण राष्ट्रों को बाँट रहे हैं; उनका विभाजन कर रहे हैं। नाना प्रकार के संघर्ष पैदा हो रहे हैं।

जर, जोरू और जमीन सदैव ही झगड़े की जड़ रही है। झगड़ा, चाहे आश्रमों में हो, चाहे समाज में हो, इन्हीं का है। इसलिए, ये भेद कम हो जाएँ, तो अच्छा है; क्योंकि, इन भेदों के कारण ही हम स्वार्थों के लिए लड़ रहे हैं। हमें माँग करनी चाहिए कि सरकार विषमताओं को समाप्त करे। हमको संगठित हो जाना चाहिए। ये ऐसे मुद्दे हैं, जिनके लिए सारे समाज को संगठित होना चाहिए। हम एक देश के नागरिक हैं। चाहे हिन्दू हो या मुसलमान या कोई और; सबके लिए एक कानून होना चाहिए। शादी और तलाक के नियम अलग-अलग हैं। उत्तराधिकार के नियमों में भी भिन्नता है। परिवार नियोजन के नियम समानरूप से सबको लागू नहीं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होते। क्या यही आजादी है ? देश की आबादी क्या सिर्फ हिन्दुओं से ही बढ़ेगी ? क्या मुसलमानों से जनसंख्या नहीं बढ़ेगी ? यदि हिन्दू आज से विवाह करना बन्द कर दें और एक भी सन्तान पैदा न करें; तो पचास वर्ष बाद देश की क्या स्थिति होगी ? क्या मुसलमानों का बहुमत नहीं हो जाएगा और हिन्दू अल्पसंख्यक नहीं हो जाएँगे ? क्या सरकार अन्धी है, जो इतना भी नहीं समझती ? यदि, सरकार अन्धी है, तो जनता को आँखें खोल लेनी चाहिए। तुम डण्डा लेकर अन्धों को चलाओ। तुम उनके डण्डे के सहारे मत चलो।

यहाँ हमको यह निर्णय लेकर जाना है कि सरकार सारे देश को एक संविधान दे। सरकार संविधान में संशोधन करके सारे देश को एक दिशा दे; एक संविधान दे। इसके लिए आपको कृतसंकल्प होना है। यदि सरकार संविधान में संशोधन नहीं करती, सबके लिए समान कानून नहीं बनाती, तो हमें संगठित होकर क्रान्ति करनी ही होगी। वह दिन दूर नहीं, जब हम लोग ऐसी सरकार का तख्ता पलट देंगे। मानव-हित के लिए, सारे देश को संगठित होना है।

मुसलमानों को भी इस बात में साथ देना चाहिए। हम सब इस राष्ट्र के नागरिक हैं। हम चुनाव इस संविधान के अधीन लड़ते हैं। संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकता के अधिकारों का लाभ उठाते हैं, तो शेष कानून अलग-अलग क्यों हों ? ऐसे तो चोर भी संगठित होकर कानून पास करवा लें कि उनके लिए चोरी की छूट होनी चाहिए। व्यभिचारी कानून पास करवा लें कि उन्हें बलात्कार का हक होना चाहिए। हम ब्राह्मण हैं। मनुस्मृति और रामायण के आधार पर, यदि ब्राह्मण दुराचार भी करे, तो उसे मारना नहीं चाहिए। उसे गाँव या देश से निकाल देना चाहिए। क्या सरकार ऐसे कानूनों को लागू कर सकेगी ?

Digitization by American Academy of Indic Studies: AAIS(USA)

एक दिन मैं वृन्दावन में पूज्य स्वामी अखण्डानन्दजी का प्रवचन सुन रहा था। उन्होंने कहा कि यदि हमारे घर को किसी ने आग लगा दी है; तो हो सकता है कि हमारा कोई पाप रहा हो, जिसके कारण वह आग लगाई गई हो। इसलिए, मनुस्मृति, रामायण और अन्य धर्मग्रन्थों के अनुसार, आग लगाने वाले व्यक्ति को दण्डित नहीं किया जाना चाहिए। उसको न्यायालय में नहीं ले जाया जाना चाहिए। लेकिन, सरकार को न्याय तो धर्मग्रन्थों के अनुसार नहीं, कानून के अनुसार करना चाहिए। धर्मग्रन्थ तो हमारे मानसिक उत्थान के लिए हैं; सामाजिक न्याय देने के लिए नहीं है। इसलिए, फैसले राष्ट्र के कानून के अनुसार हों और हम मानसिक उत्थान धर्म के अनुसार करें।

धर्म मानसिक सुधार के लिए है। सामाजिक न्याय देने का कार्य तो राष्ट्रीय कानून का ही है। यदि राष्ट्र की सरकार, सामाजिक न्याय देने के लिए एक-सा कानून न बनाए, तो ऐसी सरकार को विधि के अनुसार पलट दिया जाना चाहिए। ऐसी सरकार को जनता पर शासन करने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। हमारा आपसे इतना ही निवेदन है। □□□

आरती

मिल कीजै सतगुरु आरती। मिल कीजै···
जिनकी चरण कमल रज सुन्दर,
भव दुःख सकल निवारती। मिल कीजै···
दया से जिनकी द्वैत दूर हो,
मन की माया टारती। मिल कीजै···
वाणी अमृतमय सुन जिनकी,
बुद्धि ब्रह्म को धारती। मिल कीजै···
पाकर के 'विज्ञान' ज्ञान को,
पूर्ण शान्ति विस्तारती। मिल कीजै···

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

महाराज श्री के अन्य प्रवचन-संग्रह

दो दिशाओं की यात्रा एक साथ (अप्राप्त)	४.००
धर्म-क्रान्ति (अप्राप्त)	२.५०
सुखी मीन जहँ-नीर अगाधा	७.००
अन्तर्तृप्ति (अप्राप्त)	५.००
प्यासा सागर (अप्राप्त)	५.००
साधना-विधि	१.५०
ध्यान मुक्ति का साधन (अप्राप्त)	१.२५
इनर पीस (अंग्रेजी में)	१०.००
मैं और परमात्मा	५.००
आत्म-साक्षात्कार	५.००
नंगा परमात्मा	६.००
मोक्ष कैसे?	३.००
क्या ईश्वर है?	३.००

पुस्तक-प्राप्ति स्थान

अखण्ड परमधाम

रानी की गली, सप्त सरोवर, हरिद्वार (उ.प्र.)

अर्जुनदास बुद्धिराजा, कोठी नं. ५, दक्षरोड विश्वासनगर,
शाहदरा, दिल्ली-३२ फोन : २०४५६२

विशेष जानकारी एवं पत्र-व्यवहार के लिए—
अखण्ड परमधाम, रानी की गली, सप्त सरोवर, हरिद्वार (उ.प्र.)
दूरभाष : १३०५